भाई गुरदास

व्यक्तित्व और कृतित्व

डॉ॰ निर्मल कुमार कौशिक

भाई गुरदास :
व्यक्तित्व और कृतित्व

निर्मलकुमार कौशिक

सूर्य-प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली-११०००६

प्रकाशक : सूर्य प्रकाशन
नई सड़क, दिल्ली-६

मुद्रक : वार्ष्णेय प्रिंटिंग प्रेस
विश्वासनगर, शाहदरा, दिल्ली-३२

प्रथम संस्करण : जनवरी १९८४

मूल्य : ३५.००

लेखक की रचनात्मक उपलब्धियाँ

(क) निम्नलिखित काव्य-संकलनों में कविताएँ

१. अरुण किरण (हिन्दी) — हिन्दी-इतर प्रदेशों के कवियों का काव्य-संग्रह
सम्पा० डॉ० सी० एच० रामुलु — भारती शिक्षा समिति, वरंगल (आ० प्र०)

२. प्रवेश (पंजाबी) — जन-साहित्यकार सभा, छेहरटा (अमृतसर)
सम्पा० जसबीरसिंह 'जस'

३. तारिका मण्डल (पंजाबी) — पंजाबी लिखारी सभा, फिरोजपुर
सम्पा० राजिन्द्रसिंह छाबड़ा

(ख) १. अनुवाद (पंजाबी में) — अनु० निर्मलकुमार कौशिक
इन्दु इक बिन्दु दो — नवरूप साहित्य केन्द्र, भकनां (अमृतसर)
ले० डॉ० त्रिलोकीनाथ व्रजबाल

२. पत्र-पत्रिकाओं में फुटकल रचनाएँ

(ग) १. कुछ शोध-पत्र

२. भाई गुरदासकृत कवित्त-सवैये (सम्पादन, प्रकाशनार्थ)

३. भाई गुरदास: व्यक्तित्व और कृतित्व (शोध-प्रबन्ध)

विषय सूची

भूमिका

पंजाब की मध्ययुगीन रिक्थ में अपभ्रंश, ब्रज और अवधी भाषाओं का विलक्षण स्थान रहा है। मध्ययुगीन साहित्य के कई केन्द्रों ने इस विरासत को गौरवमयी बनाने के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। भाई गुरदास इसी भूमिका के अग्रदूत हैं।

गुरमुखी लिपि में उपलब्ध हिन्दी-साहित्य के पहले सशक्त कवि भाई गुरदास ही हैं। सर्वाधिक प्रभावित करने वाली बात तो यह है कि इन्होंने ब्रज के कबित्त-सवैयों को गुरमुखी लिपि में ब्रज के व्याकरणानुसार रचा। पंजाबी साहित्य में भाई गुरदास को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। सिक्ख धर्म की पावन वाणी को पंचम गुरु अर्जुनदेव के आदेशानुसार इन्होंने गुरुग्रन्थसाहिब में संकलित किया। यह संकलन आज भी धर्म, दर्शन संस्कृति और साहित्य की दृष्टि से इनके कौशल का कालजयी हस्ताक्षर है। भाई गुरदास बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। गुरु अर्जुनदेव ने इनकी वाणी को 'गुरुग्रन्थसाहिब की कुंजी' कहकर गरिमा दी। स्वतन्त्र लेखक के रूप में भाई गुरदास हिन्दी और पंजाबी, दोनों भाषाओं के सिद्धहस्त कवि हैं। इनकी पंजाबी-रचना 'ज्ञान रत्नावली' प्रारम्भिक सिक्ख गुरुओं की जीवनी का प्रामाणिक दस्तावेज है। भाई गुरदास लगभग १०० वर्ष तक गुरुओं के सम्पर्क में रहे। इस सम्पर्क से उन्होंने गुरु-काव्य, गुरु-दर्शन तथा गुरु-मत का प्रचार कर अपने लक्ष्य की पूर्ति की।

मेरे सुयोग्य शिष्य श्री निर्मलकुमार कौशिक ने पंजाब के इस प्रतिभाशाली कवि की हिन्दी-रचना (कबित्त-सवैये) का मूल्यांकन कर पंजाब की प्राचीन विरासत के एक अध्याय की पुनर्रचना की है। इस पुनर्रचना में वह काफी सीमा तक सफल हुआ है। पहली बार कबित्त-सवैयों का सम्यक् मूल्यांकन इस पुस्तक में प्रस्तुत हुआ है। वास्तविकता तो यह है कि पंजाबी के प्रकाण्ड विद्वानों ने भी इसे हिन्दी की रचना कहकर इसके पक्ष-विपक्ष में एक पंक्ति तक नहीं लिखी। इस दृष्टि से इस कृति की मौलिकता को परखा जा सकता है।

'भाई गुरदास : व्यक्तित्व और कृतित्व' कृति मध्ययुगीन हिन्दी-साहित्य में पंजाब के योगदान को रेखांकित तो करेगी ही, इसके साथ ही तद्‌युगीन युग और परिवेश को बृहत् इतिहास की कड़ी से भी जोड़ेगी।

लेखक हिन्दी, संस्कृत और पंजाबी का ज्ञाता है। इसलिए प्रस्तुत कृति में कबित्त-सवैयों का विश्लेषण, मूल्यांकन तथा व्याख्या सटीक पद्धति के साथ सम्पन्न हुई है। भाई गुरदास गुरमत के दार्शनिक अधिकारी विद्वान् होने के साथ-साथ उच्चकोटि के साहित्यकार भी थे। लेखक ने प्रत्येक अध्याय में उनकी काव्य-प्रतिभा पर प्रकाश डाला है। यह इस कृति की साहित्यिकता है। 'कबित्त-सवैयों का साहित्यिक मूल्यांकन' अध्याय में भाई गुरदास की भाषा, शैली, रस, छन्द, अलंकार तथा विषय-वस्तु का निरूपण आधुनिक प्रतिमानों के मानदण्डों द्वारा प्रस्तुत किया गया है। यही कुछ आधार हो सकते हैं जो भाई गुरदास को हिन्दी की जीवन्त साहित्यिक परम्परा से जोड़ते हैं। मेरी दृष्टि में अभी तक डॉ० हरिभजनसिंह, डॉ० मनमोहन सहगल, डॉ० जयभगवान गोयल, शमशेर सिंह अशोक प्रभृति विद्वानों ने इस महान लेखक की रचना की ओर संकेत अवश्य किया है, मगर गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध हिन्दी-साहित्य के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी-साहित्य पर हुए शोध-कार्यों में इस सशक्त हस्ताक्षर पर कुछ भी नहीं लिखा गया। यह कृति शोध की परम्परा को एक दृष्टि से पूर्ण करती है।

श्री निर्मलकुमार कौशिक ने प्रस्तुत पुस्तक के लेखन में आधारभूत सामग्री का उपयोग किया है। उन्होंने अभी तक भाई गुरदास पर हुए शोध कार्यों की अच्छी प्रकार से परख-पड़ताल की है। एक अच्छे शोधार्थी का यही गुण होता है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि उनकी यह कृति पंजाब के हिन्दी-साहित्येतिहास-लेखन में महत्त्वपूर्ण योगदान देगी। मुझे आज भूमिका के ये चन्द शब्द लिखते हुए हार्दिक प्रसन्नता हो रही है, क्योंकि किसी न किसी रूप में मैं पंजाब के इस हिन्दी-साहित्य को राष्ट्रीय स्तर पर विकसित करने में सहायक हो रहा हूँ। मेरी 'वाहिगुरु' से यही प्रार्थना है कि श्री निर्मलकुमार कौशिक भविष्य में किसी ऐसे ही विषय पर शोधकार्य सम्पन्न करे।

डॉ० हरमहेन्द्रसिंह बेदी
हिन्दी-विभाग,
गुरु नानक देव विश्वविद्यालय
अमृतसर।

शहीदी दिवस गुरु अर्जुनदेव,
१४ जून, १९८३.

लेखक की ओर से

मनुष्य जन्म से ही अपनी सभ्यता, संस्कृति व वातावरण से प्रभावित होता है। पारिवारिक धार्मिक वातावरण, उस पर पंजाब की सर्वश्रेष्ठ सभ्यता और संस्कृति का जो प्रभाव बचपन से ही मुझ पर पड़ा, उसी के फलस्वरूप मैं धार्मिक साहित्य की ओर उन्मुख हुआ। विद्यार्थी-काल में ही गुरवाणी और गुरमत का महत्त्व जान लिया। पंजाब की संस्कृति में सिक्ख गुरुओं तथा आदिग्रन्थ को जो स्थान प्राप्त है, उसका प्रभाव पंजाब की विचारधारा और जन-जीवन में सामान्यतया परिलक्षित होता है। गुरवाणी और गुरमत की समझ के पश्चात् मेरे मन में यह उत्सुकता पैदा हुई कि गुरु अर्जुनदेव जी ने किन गुणों के कारण 'आदिग्रन्थ' के लेखन कार्य के लिए भाई गुरदास को नियुक्त किया। भाई गुरदास के जीवन-परिचय से जान सका कि वे एक महान विद्वान्, दार्शनिक, सन्त और धर्म-प्रचारक थे। भाई गुरदास की स्वतन्त्र एवं मौलिक रचना 'कबित्त-सवैये' की सूचना पाकर मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। ब्रजभाषा को गुरमुखी लिपि में रचकर धर्म-प्रचार की योजना का यह ढंग निश्चय ही भाई गुरदास की अद्‌भुत प्रतिभा का ही परिणाम है। तभी मैंने आदरणीय डॉ० हरमहेन्द्रसिंह बेदी जी के निदेशन में शोध-कार्य करने का निश्चय किया।

इस शोध-कार्य की सबसे बड़ी बिडम्बना यह रही कि भाई गुरदास कृत कबित्त-सवैये के गुरमुखी लिपि में अनेक संस्करण उपलब्ध हैं। कुछ सटीक भी हैं, किन्तु देवनागरी में बहुत कम हैं। जो हैं, वे सन्तोषजनक नहीं हैं। इस कठिनाई को देखते हुए डॉ० हरमहेन्द्र सिंह बेदी जी के सहयोग एवं प्रेरणा से भाई गुरदास कृत 'कबित्त-सवैये' का देवनागरी लिप्यन्तरण कर शीघ्र प्रकाशित किया जा रहा है, ताकि इस महत्त्वपूर्ण रचना का रूप निश्चित कर, इसे हिन्दी-साहित्य में उचित स्थान दिया जा सके।

भाई गुरदास की इस हिन्दी-रचना की त्रासदी यह भी रही कि हिन्दी-विद्वान् गुरमुखी लिपि में रचित होने के कारण इसे पंजाबी की रचना स्वीकार करते रहे, जबकि पंजाबी विद्वान् ब्रजभाषा के कारण इसे हिन्दी की रचना मान लेते रहे। मैंने चुप्पी की बर्फ को पिघलाने का प्रयत्न किया है और भाई गुरदास के कबित्त-सवैये का गहन अध्ययन करके उनमें वर्णित प्रतिपाद्य को प्रस्तुत किया है।

'भाई गुरदास : व्यक्तित्व और कृतित्व' भाई गुरदास एवं उनकी महत्त्वपूर्ण हिन्दी-रचना कबित्त-सवैये का परिचय पाठकों तक पहुँचाने का विनम्र प्रयास है, निश्चयात्मक निर्णय नहीं। इस विषय का श्रीगणेश करने में मैं गौरव अनुभव करता हूँ।

मेरा यह प्रयास कदापि सफल न हो पाता यदि मेरी इस इच्छा को परमादरणीय डॉ० रमेश कुन्तल मेघ, विभागाध्यक्ष, गु० ना० दे० वि० वि०, अमृतसर अपनी अनुमति, प्रेरणा व उत्साह का सम्बल प्रदान न करते। इसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

आदरणीय डॉ० हरमहेन्द्रसिंह बेदी, गु०ना० दे० वि० वि०, अमृतसर के निदेशन, प्रोत्साहन व सहयोग से मुझे हर समय, हर प्रकार की कठिनाई व समस्या को हल करने में सुविधा रही है। उनके अध्ययन और अनुभव का मैंने यथासमय लाभ उठाया है। इस कार्य को आरम्भ करने से लेकर प्रकाशित होने तक की सम्पूर्ण प्रेरणा, लग्न, परिश्रम, सहयोग एवं योजना के लिए मैं डॉ० हरमहेन्द्रसिंह बेदी जी का आभारी हूँ।

इस शोध-कार्य के लिए डा० मनमोहन सहगल, शमशेरसिंह अशोक, प्यारासिंह पद्म, रत्नसिंह जग्गी, प्रीतमसिंह प्रभृति विद्वानों से पत्राचार द्वारा यथेष्ट सूचना प्राप्त की, जिसके लिए मैं उनका धन्यवाद करता हूँ।

अपने परम प्रिय मित्र जसबीरसिंह 'जस' एम० ए०, एम० फिल्, जिनकी योग्यता एवं सद्भावना से मुझे शोधकार्य करने का संकेत मिला तथा जिनके आश्रय में रहकर मैंने यह कार्य सम्पन्न किया, का मैं ऋणी हूँ और हार्दिक धन्यवाद करता हूँ। अन्य (प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से) स्नेहियों, शुभाकांक्षियों के सहयोग के लिए भी धन्यवादी हूँ।

गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, खालसा कालेज, अमृतसर तथा सिक्ख रेफरेन्स लाइब्रेरी, अमृतसर के पुस्तकालयों के अधिकारियों तथा कर्मचारियों का भी अतीव धन्यवादी हूँ, जिन्होंने समय-समय पर पुस्तकें उपलब्ध कराने में योगदान दिया।

डॉ० हरमहेन्द्रसिंह जी के कथनानुसार मैं भविष्य में भी हिन्दी-साहित्येतिहास की इसी कड़ी को आगे जोड़ने के लिए दृढ़-संकल्प हूँ, ताकि पंजाब में गुरमुखी लिपि में रचित हिन्दी-साहित्य की इस परम्परा की समृद्धि को प्रमाणित किया जा सके। मुझे आशा है यह हिन्दी-साहित्य की अनुपम कृति होगी।

मेरे इस अल्प-प्रयास से पंजाब में गुरमुखी लिपि में उपलब्ध हिन्दी-साहित्येतिहास के शोधार्थियों एवं विद्यार्थियों को लेशमात्र भी लाभ पहुँचा, तो मैं अपने इस परिश्रम को सार्थक समझूँगा।

बाजार बांसां वाला,
फिरोजपुर शहर, १५२००२

विदुषामनुचरः,
निर्मलकुमार कौशिक

१ | भाई गुरदास : परिचय

भाई गुरदास सिक्ख धर्म के सुप्रसिद्ध प्रचारक, विद्वान, कवि, व्याख्याता एवं एक महान लेखक माने जाते हैं। गुरुघर की जितनी सेवा भाई गुरदास ने की है उसके समान कोई दूसरा उदाहरण नहीं मिलता। "भाई साहिब भाई गुरदासजी सिक्खों के सबसे बड़े प्रचारक कहे जा सकते हैं, क्योंकि आपने जब से सिक्खी धारण की, तब से ही सिक्खी का प्रचार करते रहे। तीसरे सतगुरु से लेकर छठे सतगुरु साहिबान तक गुर सिक्खी का प्रचार बड़े (सुचज्जे) अच्छे ढंग से किया।"[1] आपकी विद्वत्ता, बुद्धिमत्ता किसी से भी छिपी नहीं है। इसी के फलस्वरूप आपको गुरु-घर के महान कार्यों की जिम्मेदारी सौंपी गई थी। आपने सिक्ख धर्म के गहन तत्त्वों को अपनी रचनाओं के माध्यम से सार रूप में प्रकट किया, जिसका आधार सिक्ख धर्म और दर्शन हैं। आपके महान कृत्यों, रचनाओं तथा व्यक्तित्व के आधार पर अगर आपको सिक्ख धर्म के व्यास (ऋषि) मान लिया जाए, तो अत्युक्ति न होगी।

१. जन्म

भाई गुरदासजी के जन्म के बारे में कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिलता, क्योंकि तत्कालीन परम्परा के अनुसार उन्होंने अपनी किसी भी रचना में अपने जीवन अथवा व्यक्तित्व सम्बन्धी कोई संकेत नहीं दिया। कुछ वर्ष पूर्व भाई संतोषसिंह के 'गुरु प्रताप सूरज' तथा ज्ञानसिंह के 'तवारीख गुरु खालसा' तथा शि० गु० प्र० कमेटी के खालसा समाचार की खोज रिर्पोटों के अध्ययन से कुछ तथ्यों का अनुमान लगाने का प्रयत्न अवश्य हुआ है। भाई वीरसिंह ने इनका जन्म १६०० से १६१० विक्रमी के बीच किसी सम्वत् को माना है।"[2] आपके पिता का नाम श्री दातारचन्द था, जो तीसरे गुरु अमरदास (१४७९-१५७४) के भाई थे। वे भी गुरु-घर के अच्छे सेवक थे। कहा जाता है कि एक दिन गुरु अमरदास को ध्यान आया कि दातारचन्द गुरु-घर के अच्छे सेवक हैं, मगर निःसन्तान होने से दुःखी हैं। ऐसी उच्च आत्मा दम्पत्ति के घर किसी महान विद्वान् ज्ञानवान रूह (आत्मा) का प्रकाश होना चाहिए···सो आपके इस (फुरने) विचार के पूरे एक वर्ष के बाद संवत् १६१५ वि० (सन् १५५८) को माता जीवनी की कोख से गोईन्दवाल (अमृतसर) में एक बालक ने जन्म लिया। सिक्ख-परिवार ने अपनी श्रद्धा के अनुसार सतगुर और संगत की हजूरी में उसका नाम गुरदास रखा'[3] भाई रणधीर सिंह के अनुसार 'भाई साहिब का जन्म भल्ला परिवार के सिक्ख सजने और गोईन्दबाल आ बसने के बाद संवत् १६०८ वि० में अर्थात् गुरु अर्जुनदेव के जन्म से दो वर्ष पहले

हुआ।'[४] उपरोक्त चारों विद्वानों के मतानुसार भाई गुरदास का जन्म लगभग भाई वीरसिंह के बताए संवत् १६००-१६१० के आसपास ही ठहरता है। भल्ला-परिवार से सम्बन्ध रखने के कारण ही आप भाई गुरदास भल्ला के नाम से प्रसिद्ध हुए।

इतना तो स्पष्ट ही है कि आपने गुरु अमरदासजी से ही विद्या और सिक्खी ग्रहण की। इस दृष्टि से भी अगर देखा जाए, तो 'गुरु अमरदासजी सन् १५५२ में गद्दी पर बैठे। तब (भाई) गुरदास की आयु नौ-दस वर्ष की होगी। जिस करके वे पढ़ाई के योग्य थे। इस हिसाब से आपका जन्म सन् १५४३ के आस-पास ही बनता है।'[५] जो भी हो, इन सभी तथ्यों और घटनाओं के आधार पर भाई गुरदास का जन्म सं० १६०० और १६१० के बीच ही ठहरता है, जो लगभग सभी विद्वानों को मान्य है। भाई रणधीरसिंह ने भी इनका जन्म १६०० विक्रमी (१५५१ ई०) में ही माना है। जो सर्वमान्य है और भाई वीरसिंह भी इसी मत के हैं।

कुछ विद्वानों के अनुसार इनके पिता का नाम दातारचन्द न होकर ईशरदास था। इतना तो निश्चित ही है कि ये गुरु अमरदास जी के भतीजे थे, जो सिक्ख धर्म की गुरु-परम्परा के तीसरे गुरु बने। 'गुरुजी के चाचा चन्दभानु' के घर दो बालक 'दातार चन्द' और 'ईशरदास' पैदा हुए। इसी ईशरदास के इकलौते पुत्र भाई गुरदासजी हैं।'[६]

भले ही गुरदासजी के पिता का नाम निश्चित तौर पर नहीं मिलता, तो भी इतना तो स्पष्ट ही है कि भाई गुरुदासजी के पूर्वज भल्ले खत्री थे, जो जिला अमृतसर के 'बसरकी' गाँव के निवासी थे। इन्हीं की वंश-परम्परा में गुरु अमरदास हुए और ईशरदास और दातारचन्द इनके चाचा की सन्तान थे। भाई गुरदास इनमें से किसी एक की सन्तान थे। इस प्रकार भाई गुरदास गुरु अमरदास जी के भतीजे थे।

२. शैशव

'अभी आप तीन ही वर्ष के हुए थे कि आपके पिताजी चलाना कर गए।··· पिता के गुरुपुरी सिधारने से सोए सिद ही पालना, सम्भालना, पढ़ाना, लिखवाना गुरु जी की सरपरस्ती के नीचे होना था।'[७] गुरुजी का आप से जन्म से ही अपार स्नेह था आपके माता-पिता भी गुरु-घर के अनन्य सेवक थे। भाई गुरदास का जन्म भी उन्हीं के वरदान से हुआ, ऐसा कहा जाता है। सो आपका बचपन गुरुजी के चरणों में बीता। आप बचपन से ही योग्य, प्रतिभाशाली व श्रेष्ठ कवि थे। बचपन में ही आपने अपनी माताजी के साथ कई तीर्थ-स्थलों की यात्रा कर ली थी। "जब गुरुजी संवत् १६१५ वि० (सन् १५५८) में अभिजित नक्षत्र के समय तीर्थों पर गई, 'तीर्थ उधम सतगुर किया लोक उधरन अरया' तो उस समय गुरदासजी अपनी माताजी के साथ छोटी सी आयु में थे। छोटे, बहुत छोटे गुरुदासजी पाँच वर्ष की अवस्था में भी भावपूरित कविता रच लेते थे।"[८] आप में दैवी प्रतिभा थी। सरस्वती के वरद पुत्र भाई गुरदास अपनी प्रतिभा का प्रमाण बचपन में ही देने लगे थे। आपको छोटी अवस्था में ही गुरु-घर के कई कार्य सौंपे गए, जिनका निर्वाह सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। जब गुरु अमरदासजी ने गुरु अंगद (१५०४-१५५२) की आज्ञा से गोईंदवाल (अमृतसर) नगर की स्थापना की, तो सारा

गुरु-परिवार गोईंदवाल में आकर रहने लगा। अतः भाई गुरदास के बचपन के दिन गोईंदवाल में ही बीते। वहाँ के सम्पूर्ण आध्यात्मिक वातावरण का प्रभाव भाई गुरदास पर भी पड़ना स्वभाविक ही था। 'सो यहाँ यह होनहार बिरवा फूटती मसू भेदी उमर में गुरमुखी, हिन्दी, संस्कृत और फारसी आदि विद्या से हरियाला हो गया और शास्त्रों, उपनिषदों, पुराणों की अत्यन्त वाकफीयत से प्रफुल्लित हो गया।'[९] आप गुरु घर-के वातावरण में पूरी तरह से रंग गए। आप हरमन प्यारे हो गए। आपकी विद्वत्ता की धाक चारों ओर फैल गई।

३. यौवन

आपका व्यक्तित्व महान था और विचार उच्च थे। गुरुजी के बताए मार्ग पर दृढ़भाव से चलना आपका स्वभाव बन चुका था। आप में एक अच्छे सेवक आदर्शभक्त और आज्ञाकारी शिष्य के सभी गुण मौजूद थे। आप विद्यार्थी काल में भी प्रत्येक बात को गहराई से सोचते थे और उसकी अपने ही ढंग से व्याख्या करते थे। आप संस्कृत का गहन अध्ययन करने हेतु काशी भी गए। तीव्र बुद्धि के कारण आप शीघ्र ही प्रकाण्ड विद्वान हो गए। आपने आध्यात्मिक विषयों को लेकर अनेक पण्डितों से तर्क-वितर्क भी किए, लेकिन विजय आप ही की हुई। गुरुजी की आप पर अपार कृपा थी। 'आप सतगुरु जी के निर्वाचित और निकट वर्ती सिक्खों में से एक थे। इनका पालन-पोषण और पढ़ाई-लिखाई भी गुरुजी के हाथों हुई थी। घर एक ही था। कोई भिन्न-भेद नहीं था। अब तो आठों पहर ही वे हजूरी में रहते थे। जो आपने आँखों देखा, केवल देखा ही नहीं, सतगुरु जी से तद्‌रूप हुए।'[१०] बादशाह अकबर की गुरु अमरदास के प्रति असीम श्रद्धा थी। गुरुजी के निकट होने के कारण उसे आपसे भी प्रेम हो गया। इसलिए कई-कई दिन वह गुरुजी से आज्ञा लेकर उन्हें आगरा या दिल्ली बुला लिया करता था। अकबर विद्वानों को उचित सम्मान देता था। वह भाई गुरदास से गुरवाणी सुनकर आनन्दमग्न होता था और भाईजी इस तरह से गुरवाणी का प्रचार करने में गौरव का अनुभव करते थे। जब गुरु अमरदेवजी (संवत् १६३१ वि०) ज्योति-ज्योति समाए, तब आप आगरा में थे। उन्हें पता तो चल गया था, पर आगरे से गोईंदवाल आते-आते देर लग गई।

भाई जेठा को गुरु गद्दी का अधिकारी मान कर उन्हें गुरु अमरदास का स्वरूप जान लिया गया और वे भाई जेठा से चतुर्थ गुरु रामदास होकर गुरु-गद्दी पर सुशोभित हुए। भाई गुरदासजी ने अपने सिक्खी प्रचार के कर्त्तव्य को पहले से भी अधिक विकसित किया। चतुर्थ गुरु रामदासजी के आदेश पर आपने सिक्ख धर्म के प्रचार के साथ-साथ गुरवाणी को एकत्र करना भी आरम्भ किया। आप लोगों की संशय-निवृत्ति भी करते और कीर्तन द्वारा उन्हें मुग्ध भी। 'श्री गुरु रामदास जी के गुरुआई के सात वर्षों में भाई साहिबजी की कई छोटी-बड़ी उदासियाँ थी। आपको दिन-रात सेवा और गुरवाणी एकत्र करने की लग्न थी।'[११] इतना ही नहीं, आप बाहर रहते हुए भी गुरु-घर के प्रत्येक कार्य में तन्मयता से भाग लेते थे। 'भाई साहिब ने आगरा केन्द्र बना कर चारों कोनों में सच-धर्म के बीजमन्त्र का छींटा दिया। बड़े-बड़े नगरों में संगतों और

धर्मशालाओं की स्थापनाएँ कीं।'[१२] सिक्ख धर्म सम्बन्धी भवनों का निर्माण कार्य भी आपकी देख-रेख में ही होता था। गुरुओं द्वारा अनेक गाँव और नगर बसाए जाने में भी इनका महत्त्वपूर्ण योगदान है। इतना ही नहीं कि आपने इनके निर्माण-कार्य की देखरेख ही की, अपितु इनके बनाने में भी हाथ बँटाया। अतः उन्हें भवन-निर्माण-कला का पूर्ण ज्ञान था। '१६०६ ई० में 'अकाल तख्त' भवन के निर्माण हेतु गुरु हरगोविन्द साहिब ने महान गुरसिक्खों की सेवा प्राप्त की थी और वे थे भाई गुरदासजी और बाबा बुड्ढा जी।'[१३] भाई गुरदास की योग्यता और प्रतिभा के बल पर ही उन्हें गुरु-घर के प्रत्येक कार्य के लिए नियुक्त कर दिया जाता था। भाई साहिब भी सौंपे गए किसी भी कार्य को पूर्णतया जिम्मेदारी, लग्न, परिश्रम और योग्यता से निभाते। 'पिता गुरु रामदास की आज्ञानुसार गुरु अर्जुनदेवजी ने 'अमृत सरोवर' को पक्का करने और उसमें हर मंदिर का निर्माण करने की जिम्मेदारी भाई गुरदास और बाबा बुड्ढाजी को सौंपी।'[१४] भाई गुरदास ने दिन-रात परिश्रम करके इस कार्य को सम्पन्न कराया। गुरु रामदासजी ने अपनी मृत्यु के पूर्व ही अपने बड़े लड़के पृथीमल को गुरु-गद्दी के अयोग्य मानकर अपने छोटे लड़के अर्जुनमल को गद्दी का अधिकारी बनाया, जो बाद में सिक्खों के पाँचवें गुरु बने (१५६३-१६०८)। आप छोटा होने पर भी अपने बड़े भाई पृथीमल की अपेक्षा प्रतिभाशाली व एक उच्च व्यक्तित्व के स्वामी थे। 'जहाँ आप प्रभु के सच्चे भक्त थे, वहाँ अमर कवि, अद्वितीय सम्पादक, संगीतकार, एक अच्छे पिता, महान उद्यमी, आज्ञाकारी सुपुत्र, क्षमावान भाई व एक अच्छे मार्गदर्शक भी थे।'[१५] आपका बड़ा भाई पृथीमल आपसे ईर्ष्या करने लगा और उसने कई बार आपको मारने की भी चेष्टा की। मगर गुरु जी को आरम्भ से ही परम पिता परमात्मा की भक्ति की अटूट लग्न थी। अतः आप डरते न थे। 'आपका सारा जीवन सहनशीलता और नम्रता का प्रत्यक्ष उदाहरण है। बड़े भाई पृथीमल की ईर्ष्या को प्रेम से सम्भाला और कभी भी मन में उसके प्रति विपरीत भाव नहीं लाए।'[१६] लेकिन पृथीमल ने गुरु अर्जुनदेव के विरुद्ध अनेक मुस्लिम शासकों के कान भरे। जनता को भी गुमराह किया और अपने को गुरु-घर का स्वामी बताकर लोगों से धन बटोरना आरम्भ किया और गुरु-घर की बदनामी करनी शुरू कर दी। गुरुजी ने उसकी आर्थिक सन्तुष्टि हेतु कुछ इमारतें और आमदन उसे दे दीं। लेकिन फिर भी पृथीमल के संसद भोले-भाले दूर से आए सिक्खों को घेर कर प्रेरणा देकर पृथीमल के चरणों में उपस्थित कर देते थे। भाई गुरदास से यह सब सहन नहीं हुआ। गुरु-घर को आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न बनाने और सिक्ख धर्म का प्रचार करने हेतु भाई गुरदास ने 'दसबंध' (अपनी कुछ आय का लगभग दसवाँ भाग नियमित रूप से गुरु के चरणों में अर्पित करना) की रीति चलाई। 'सतगुर ने भाई गुरदास की यह तजबीज़ स्वीकार कर ली और सिक्ख की दसवें हिस्से की आधी कमाई (५ फीसदी) (दसबंध का अर्थ दसवें भाग का आधा पाँचवा भाग) गुरु के लेखे लगाने का विधान बाँध दिया।'[१७] इससे गुरु-घर का आर्थिक ढाँचा सुदृढ़ हो गया और प्रचार तेज़ी से बढ़ने लगा।

गुरु अर्जुनदेव ने भाई गुरदास की सहायता से 'आदिग्रंथ' (गुरु-ग्रंथ साहिब) (१६०१-१६०४) का सम्पादन करा कर उसका पठन-पाठन आरम्भ करवा दिया। भाई

गुरदास गुरु-घर की सेवा भी करते और बाहर प्रचार भी करने जाते। 'भाई गुरदासजी हर प्रकार से कार्यों को सम्पन्न करने में योग्य थे। अच्छे बुद्धिमान समझदार, अनुभवी, कसी हुई गाँठों को खोलने वाले गुरुमुख गुरसिक्ख थे। सतगुरजी की बखशिश (कृपा) आपके साथ थी। आपके श्री गुरु अमरदास, गुरु रामदास, गुरु अर्जुनदेवजी और गुरु हर-गोबिन्द राय के साथ निकट सम्बन्ध थे।'[१८] आपने आजीवन गुरुघर की सेवा करके और सिक्ख धर्म का सही अर्थ अपने प्रचार द्वारा जनता तक पहुँचाया और गुरवाणी का सन्देश देकर जनता का मार्ग-दर्शन किया। अपने गुरु और गुरमत से बढ़ कर आपकी प्रिय वस्तु कोई दूसरी न थी। इसी के लिए आपने अपना सर्वस्व त्याग दिया था। आपने तन, मन, धन से गुरु की आज्ञा शिरोधार्थ कर गुरमत का प्रचार किया।

४. अन्तिम समय

आप वृद्ध हो चुके थे। आप ने गुरु अंगददेवजी से लेकर छठे गुरु हरगोविन्दराय जी के (१५०४-१५५२ ई०) काल पर्यन्त गुरु-घर की अटूट मन से सेवा की। वृद्धावस्था में भी आप गुरु-घर की सेवा करते थकते न थे। अपने अन्तिम समय में आपने गोईंदवाल साहिब के दर्शन करने की इच्छा प्रकट की। गुरुजी सब कुछ जान चुके थे। दीवान सजाया गया, कीर्तन हुआ। अरदास की गई। आप ने सीस झुकाया।' सतगुरु और संगत के देखते ही देखते भाई गुरुदास जी की ज्योति संवत् वि. १६९६ (सन् १६३८) को अस्सूज के महीने गोईंदवाल में गुरु चरणों में जा मिली।'[१९]

५. रचनाएँ

भाई गुरदास केवल एक आदर्श सिक्ख, गुरु-घर के सेवक अथवा गुरुमत के प्रचारक ही नहीं थे, वे एक प्रतिभाशाली विद्वान कवि भी थे। उन्होंने गुरुमत सिद्धान्तों की अपने ढंग से व्याख्या की। प्रचारक का सहज स्वभाव उनकी वाणी से प्रकट होता है। मात्र व्याखया करने से ही गुरुमत का प्रचार नहीं होता। उन्होंने अपनी मौलिक वाणी द्वारा अपने दैनिक जीवन की घटनाओं और अनुभवों को अपनी रचनाओं में साकार करके गुरुमत काव्य और प्रचार में श्री-वृद्धि की। 'भाई साहिब की काव्य-रचना का दायरा खुला है। आप देश-देशान्तरों में भ्रमण-कर्त्ता, बहुत सी विद्या के ज्ञाता, धुरन्धर विद्वान थे। आपके विचार गुरु-चरणों से बन्धे हुए थे।'[२०] अब तक के अनुसन्धानों के आधार पर भाई गुरुदास की तीन रचनाएँ उपलब्ध होती हैं—

१. **संस्कृत के श्लोक** (सन् १६१४ ई०,	(जो 'गुरु प्रतापसूरज' में वाहिगुरु स्तोत्र के अन्तर्गत संकलित हैं।)
२. **वारां (ज्ञान रत्नावली)** (१६०४-१६२९ ई०)	जिनकी संख्या ४० है और भाषा पंजाबी है।
३. **कवित्त-सवैये** (वाणी **भाई गुरुदास भल्ले की**) (१६१४-१६१६ ई०)	पूर्व स्कन्ध ५५६, दूसरा स्कन्ध ११६; ब्रज भाषा में है।

संस्कृत के श्लोक

संस्कृत के श्लोकों की संख्या निर्धारित नहीं है, तो भी 'गुरु प्रतापसूरज' में भाई सन्तोषसिंहजी ने जिन छः श्लोकों का संचयन किया है, उनमें 'वाहिगुरु काव्य' का महत्त्व और स्तुति बताई गई है।

श्री गुरुदासो अथ बाहिगुरु स्तोत्र

अनुष्टुप छन्द

विश्वेशं, विश्वमिनयुक्तम्, सम्पुटे विश्व भूखणं।
विश्व-बोधं, स्वयं ब्रह्म तं प्रणवादि नमामिहं ॥ १ ॥
वर्णावर्ण विहीनाथ वेद सार प्रवर्तकः।
विश्ववर्गं महीधीशं 'वकारं' तं नमामिहं ॥ २ ॥
हरि हरादि स्वयं ब्रह्म हंस बोध प्रकाशतं।
हसतमल वरद बीजं 'हकारं' तं नमामिहं ॥ ३ ॥
ज्ञानार्कं गिराधीशं गोतीतं स्वच्छ साखिणं।
गमनागमन विहीनाथ तं 'गकारं' नमामिहं ॥ ४ ॥
राम बीजं सुरेश्वरं, देव दैत्याभिवंदितं।
सर्वस्वाश्रयमिति शक्ती, तं 'रकारं' नमामिहं ॥ ५ ॥
इत्येव महाँवर्ण भावनाथ मुहुर्मुहुः।
चर्तुवर्ग फल दाश्यं, सिद्धी एवं न संशयः ॥ ६ ॥
'इति श्री गुरु प्रताप सूरज ग्रन्थे सप्तमि रासे।
भाई गुरुदास प्रसग बरनन नाम तृतीय अंशु ॥ ७ ॥[२१]

श्री गुरुदासो अथ 'वाहिगुरु' स्तोत्र का हिन्दी-काव्यानुवाद

संस्कृत : विश्वेशं, विश्वमिनयुक्तम्, सम्पुटे विश्व भूखणं।
विश्व-बोधं, स्वयं ब्रह्म तं प्रणवादि नमामिहं ॥ १ ॥

हिन्दी : विश्व का 'वह' स्वामी स्वयं विश्व का ही रूप है,
समग्र विश्व का आभूषण, समस्त ही स्वरूप है।
विश्व का सर्वज्ञ वह, स्वयं ब्रह्म रूप है,
नमस्कार है उसे जो प्रणव आदि-रूप है॥

संस्कृत : वर्णावर्ण विहीनाथ वेद सार प्रवर्त्तकः।
विश्व वर्ग महीधीशं 'वकारं' तं नमामिहं ॥ २ ॥

हिन्दी : वेद का प्रवर्तक, वर्णावर्ण विहीन है,
धरती औ' संसार सारा उसी के अधीन है।
वाहिगुरु 'व' वर्ण को प्रणाम कीन है,
नमस्कार है उसे जो विश्व भर में लीन है॥

संस्कृत : हरि हरादि स्वयं ब्रह्म हंस बोध प्रकाशतं,
हसतमल वरद बीजं 'हकारं' तं नमामिहं ।। ३ ।।

हिन्दी : विष्णु शिव का मूल जो स्वयं हरिआदि हैं,
ब्रह्मा के लिए जो देता ज्ञानादि है।
'हकार' रूप प्रत्यक्ष है, जो बीजादि है,
नमस्कार है उसे जो मूल है अनादि है ।।

संस्कृत : ज्ञानाकम् गिराधीशं गोतीतं स्वच्छ साखिणं।
गमनागमन विहीनाथ तं 'गकारं' नमामिहं ।। ४ ।।

हिन्दी : सूर्य है ज्ञान का, जो वाणी का स्वामी है,
अकथनीय, पवित्र जो सबका साक्षामी है।
मुक्त है जन्म मरण, नहीं अवागामी है,
'गकार' रूप ईश को सदा ही नमामी है ।।

संस्कृत : राम बीज सुरेश्वरं, देवदैत्याभिवंदितं,
सर्वस्याश्रयमिति शक्ती, तं 'रकारं' नमामिहं ।। ५ ।।

हिन्दी देवी-देवताओं का स्वामी, राम बीज रूप है,
दैत्य, देव अभिवादन करे, ईश तू अनूप है।
सबका आधार, औ सर्वस्व शक्तिरूप है।
नमस्कार है उसे जो 'र' का ही स्वरूप है ।।

संस्कृत : इत्येव महा वर्ण भावनाथ मुहुर्मुहुः।
चर्तुवर्ग फल दाश्यं, सिद्धी एवं न संशयः ।। ६ ।।

हिन्दी : 'वाहिगुरु' चार वर्ण, चारों ही महान हैं,
इनका जो श्रद्धा से करते बार-बार ध्यान हैं।
धर्म अर्थ काम मोक्ष उसे करते प्रदान हैं,
बात सत्य और यह निस्सन्देह प्रमाण है ।।

जब भाई गुरदासजी ने काशी के पंडितों के अनेकानेक संशयों का निराकरण कर दिया, तब उन्होंने पूछा 'कि गुरुजी ने परमेश्वर के पुरातन नाम छोड़कर 'वाहिगुरु' नाम क्यों रचा? इसमें क्या विशेषता है।'[२२] तब भाई गुरदास जी ने इन श्लोकों द्वारा संस्कृत में उत्तर देकर अपनी विद्वत्ता और प्रतिभा का परिचय दिया। भारतीय सभ्यता और संस्कृति के रंग में रँगे भाई गुरदास जी ने उन विद्वानों के ज्ञान को थोथा सिद्ध कर दिखाया और उनके सकल संशयों को दूर कर दिया। तब उन्होंने मुक्त कंठ से कहा—

'जै गुरुदास विमल मति ग्यानी,
अब हमरे मन निशचै ठानी।
तुम तै संशय गयौ हमारा,
विविद वेद विधि कीउ उचारा।'[२३]

इस प्रकार भाई गुरदासजी ने सिद्ध कर दिया कि वे मात्र गुरुमत के प्रचारक न होकर एक उच्चकोटि के विद्वान भी थे, जो कई शास्त्रार्थ कर चुके थे और उनमें जीत कर

अपनी विद्वत्ता का सिक्का जमा चुके थे। इनके श्लोकों की संख्या इससे भी अधिक बताई जाती है। मगर अभी तक कोई प्रमाण नहीं मिला है। 'कहा जाता है कि आपने एक रचना वाहिगुरु स्तोत्र संस्कृत में भी की। यदि यह रचना आपकी है, तो यह शायद आपने काशी बनारस, सन् १६१४ में प्रचार के समय की होगी।'[२४]

वारां (ज्ञान-रत्नावली) पंजाबी भाषा

भाई गुरदास की पंजाबी भाषा में कुल ४१ वारें मिलती हैं। लेकिन आज तक उनकी ३९ वारों को ही मान्यता प्राप्त हुई है। ४०वीं वार बाद में जोड़ी गई है। अब तक सभी विद्वानों ने इसके बारे में अपनी सहमति प्रकट की है कि यह वार भाव, भाषा, शैली और छन्द-प्रबन्ध की दृष्टि से भाई गुरदास की अन्य वारों से मेल नहीं खाती है। 'जहाँ तक ४१वीं वार का सम्बन्ध है यह निश्चय ही भाई गुरदास की लिखी सिद्ध नहीं होती, क्योंकि इसके भाव, भाषा, शैली, छन्द-योजना आदि के इलावा इसमें गुरु गोविन्दसिंह के युद्ध पराक्रम का वर्णन इसका सम्बन्ध भाई गुरदास भल्ले से स्थापित नहीं करती।'[२५]

यह ४१वीं वार गुरु गोविन्दसिंह के किसी गुरदास नामक श्रद्धालु की रचना है, जिसने दसम गुरु के पराक्रम का वर्णन करने हेतु इसकी रचना की होगी। लेकिन प्रमाणों के आधार पर इस नाम का कोई भी श्रद्धालु अथवा दरबारी कवि गुरु गोविन्दसिंह के दरबार में नहीं था। डॉ० जग्गी भी लिखते हैं 'सभी दृष्टियों से यह वीर रसी वार न भाई गुरदास की रचना है और न गुरु गोविन्दसिंह के किसी दरबारी कवि की, क्योंकि इतिहास से उनके किसी दरबारी कवि का नाम गुरदास सिद्ध नहीं होता। इसलिए इसके रचयिता 'गुरदास' का व्यक्तित्व सन्देहयुक्त है।'[२६] इन वारों का रचनाकाल अभी तक सन्देह युक्त है। अगर देखा जाए तो भाई गुरदास की वारों में गुरमत की व्याख्याएँ की गई हैं और सिद्धान्तों का सरलीकरण किया गया है। इससे अनुमान लगता है कि उनकी वारों का रचनाकाल गुरवाणी के पश्चात् का है। लेकिन 'सम्प्रदायी परम्परा के अनुसार भाई गुरदास वाणी ग्रन्थ साहिब के सम्पादन के समय (१६०१-१६०४) मौजूद थी, क्योंकि इसे गुरवाणी के संकलन में सम्मिलित करने के स्थान पर गुरुजी ने इसे 'गुरवाणी की कुंजी' होने का गौरवमयी महत्त्व प्रदान किया।'[२७] आप प्रचारक थे। अतः आपकी वाणी में अलग-अलग स्थानों, व्यक्तियों, विषयों का समायोजन है। गुरु कृपा और उसका महत्त्व आपकी वारों में स्पष्ट है। इसके अतिरिक्त कई वारों में गुरमुख और मनमुख, संगत और कुसंगत का निर्णय है। निन्दक, झूठे और कपटियों का चित्र सुन्दर खींचा है। सदाचारक शिक्षा उच्च दर्जे की दी है।'[२८] इसमें हास्य, लोक-साहित्य, पौराणिकता, गुरमत काव्य, आध्यात्मिकता एवं सामाजिकता का अद्भुत संयोग है। भाई गुरदास के इस 'वार'-साहित्य ने आने वाले पंजाबी साहित्यकारों को एक नई शैली प्रदान की है। आज से चार सौ वर्ष पूर्व भाई गुरदास ने वारों की रचना करके पंजाबी बोली को जो रूप प्रदान किया वही आगे चलकर लोकप्रिय हुआ। 'भाई गुरदास की ये ४० वारें सामाजिक, धार्मिक, ऐतिहासिक और सदाचारक दृष्टि से बहुत महत्त्व रखती हैं। आपने समकालीन दशा का टिप्पणी सहित वर्णन भी किया है और जो विचारधारा गुरु साहिब ने दी और उसका जो प्रभाव

पड़ा, उसे साहित्यिक भाषा में लिखा है। उस समय की दशा को भाई साहिब की वारों में देखा जा सकता है।'[२९] भाई गुरदास की वारें 'साहित्य समाज का दर्पण है' की उक्ति को अक्षरशः चतिरार्थ करती हैं। साहित्यिक दृष्टि से पंजाबी में टीका अथवा व्याख्या प्रणाली का उद्घाटन कर भाई गुरदास ने पंजाबी-साहित्य को नई दिशा प्रदान की है। उनके द्वारा प्रतिपादित व्याख्या-प्रणाली को 'भाई प्रणाली' कहा जाता है। उनके समय में 'गुरबाणी' को सरल एवं स्पष्ट रूप में प्रस्तुत करने हेतु प्रचारक अपने ढंग से गुरमत सिद्धान्तों को अपनी-अपनी शैली में प्रस्तुत करते रहे हैं। भाई गुरुदासजी ने मिथक, ऐतिहासिक, एवं दार्शनिक तत्त्वों का समायोजन कर गुरवाणी के सिद्धान्तों की अत्यन्त सरल ढंग से व्याख्या प्रस्तुत की। 'भाई साहिब गुरु अर्जुनदेवजी की आज्ञानुसार श्री हर-मन्दिर साहिब में श्री गुरुग्रन्थ साहिब की कथा भी करते रहे। भाई साहिब ने निश्चित वाणी व्याख्या प्रणाली का निर्माण किया, जिसकी सम्पूर्ण झलक उनकी रचनाओं, वारों तथा कवित्तों में उपलब्ध है।'[३०] आपकी रचना में गुरवाणी के संकेतों, प्रतीकों, सिद्धान्तों, कथाओं को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया है। पौराणिक कथाओं के सन्दर्भों, दैनिक जीवन की घटनाओं, क्रियात्मक औपचारिकताओं को आपने पद्य में इस तरह से संजोया है कि उनसे गुरमत का कोई न कोई सिद्धान्त सहज ही स्पष्ट हो जाता है। भाई साहिब ने गुरमत के बुनियादी सिद्धान्त गुरु, सिक्ख, गुरमुख, भक्ति आदि को अपनी रचना में विस्तार पूर्वक व्याख्यायित किया है। 'उन्होंने गुरवाणी के भ्रमों, भेदों, रहस्यों, सिद्धान्तों, भाव-नाओं, भावों को स्पष्ट किया, कठिन पदों के कोशमयी अर्थ दिए, पारिभाषिक शब्दों की भावना दर्शाई।...'वारां भाई गुरदास' में गुरु ग्रन्थ की व्याख्या ही मुख्य विषय है।'[३१] आपकी व्याख्या केवल कठिन शब्दों का अर्थ ही नहीं, बल्कि भावों की गहनता को स्पष्ट करने में पूर्णतया समर्थ है। 'निश्चय ही आपने गुरमत और गुरवाणी की अनेक दार्शनिक और रहस्यवादी समस्याओं की व्याख्या की और गुरवाणी के कई सन्दर्भों को खोला।'[३२] यही कारण है कि आपकी वाणी को गुरुजी ने 'गुरवाणी की कुंजी' होने का गौरव प्रदान-किया।

कवित्त-सवैये (वाणी भाई गुरदास) ब्रजभाषा

'वाहिगुरु' स्तोत्र और वारों के पश्चात् आपकी महत्त्वपूर्ण रचना कवित्त-सवैये हैं। आपने अपने प्रचारकार्य के दौरान खाली समय में अपने अनुभवों की पुष्टि हेतु जनसाधारण की तत्कालीन प्रचलित ब्रजभाषा में कवित्त सवैयों की रचना की। गुरु रामदास से सिक्खी प्राप्त करके आप गुरमत प्रचार के लिए बनारस, काशी और आगरा चले गए। 'आप कम से कम १५७४ से १५८१ ई० तक आगरे में प्रचार करते रहे और साथ ही अपनी रचना कवित्त और सवैये की रचना करते रहे।'[३३] पहले तो ५५६ कवित्त-सवैये ही प्रचलित थे। बाद में भाई साहिब वीरसिंहजी के सत्प्रयत्नों से ११६ और कवित्तों को प्रकाश में लाया गया। भावपक्ष और कलापक्ष दोनों दृष्टियों से इनका परीक्षण-निरीक्षण किया गया। अन्ततः सभी विद्वानों ने भाई वीरसिंहजी के इस अद्वितीय कार्य की श्लाघा की और इस रचना को 'कवित्त भाई गुरदास' (दूसरा स्कन्ध) के नाम से सर्व सम्मति से

साहित्य जगत में प्रतिष्ठित कर भाई गुरदासजी के कवित्तों में श्रीवृद्धि की और उनकी कुल संख्या ५५६+११६=कुल ६७५ मान ली गई। 'भाई साहिब की वारों के संग्रह का नाम 'ज्ञान-रत्नावली' था और कवित्तों का नाम 'वाणी भाई गुरदास' था।'[३४] भाई गुरदास की जो रचना 'वाणी भाई गुरदास' के नाम से प्रसिद्ध है, साहित्य के क्षेत्र में उसका अन्य प्रचलित नाम 'कवित्त-सवैये भाई गुरदास' है, जो शिरोमणि प्रबन्धक कमेटी, अमृतसर द्वारा हिन्दी में प्रकाशित है। इसमें प्रकाशित कवित्त-सवैयों की कुल संख्या केवल ५५६ है। २४ कवित्त मंगलाचरण के हैं। बाद में गुरु का महत्त्व और विरह का वर्णन किया गया है। 'कवित्तों का बुनियादी विषय सिक्ख आदर्शवाद है। गुरमुख का आदर्शक सदाचार और सभ्याचार है। इस आदर्श की प्राप्ति के प्रमुख साधन 'गुरु' और 'साधसंगत' हैं। 'साध' पद गुरु के लिए ही है। कुछ कवित्तों में आपने जाति विरह का वर्णन किया है। गुरु-वियोग के विरह का।'[३५] ब्रजभाषा की आपकी रचना में कुल मिलाकर ६७५ कवित्त सवैये हैं। इनमें सवैये बहुत कम हैं। कुछ दोहरे, सोरठे, छन्द आदि भी मिलते हैं।' कुल ६७५ कवित्त सवैयों में से ९५ प्रतिशत से अधिक कवित्त हैं। शेष में से आठ दोहरे, आठ सोरठे, आठ छन्द आदि हैं। सवैये तो केवल तीन ही हैं और वे भी पहले स्कन्ध में।'[३६] इन कवित्तों द्वारा भाई गुरदास ने तत्कालीन प्रचलित ब्रजभाषा के माध्यम से गुरमत के सिद्धान्तों, गुरु का महत्त्व और सिक्ख के कर्त्तव्य तथा गुरु की श्रद्धा और विरह का अनुभूतिपरक चित्रण किया है। 'आत्म समर्पण की भावना से लेकर विरह में व्याकुल अवस्था तक अनुभव का सीमा-विस्तार हुआ है।'[३७] इन कवित्तों के विषय वस्तु के आधार पर यह कहना असम्भव है कि ये सभी कवित्त एक ही स्थान व एक ही निरन्तर समय में लिखे गए हैं। विषय की भिन्नता इनकी काल व स्थान सम्बन्धी एकता को सन्देहास्पद करती है। भाई वीरसिंह के अनुसार 'वे बताते हैं कि ये अलग-अलग समय और विषयों के होने पर अलग-अलग निरीक्षणों के सामने आने पर अलग-अलग विषयों पर लिखे जाते रहे हैं। वे सभी वियोग काल में लिखे जाने कम सम्भव हैं। बेशक विशेष रचना बनारस में और उससे पहले आगरे में दोनों स्थानों पर होनी अधिक उचित बात है।'[३८] अतः मुख्य रूप से यह कहा जा सकता है कि भाई गुरदासकृत कवित्तों का मुख्य रचना-समय आगरा का प्रचार स्थान, बनारस की यात्रा का व विद्वानों के संवादों का समय रहा है।' इसके अतिरिक्त, कवित्तों में प्रकट किए भाव यह भी संकेत करते हैं कि यह उस काल की रचना है जब भाई गुरदास गुरु-चरणों की छाँह से दूर थे। और चूँकि प्रचार के लिए भाई साहिब बनारस, आगरा आदि स्थानों पर गए थे। इसलिए क्या वियोगावस्था की दृष्टि से और क्या भाषा की दृष्टि से कवित्त पंजाब से बाहर रहे दिनों की रचना हैं।'[३९] आपका जीवन एक पूर्ण गुरसिक्ख और आदर्श प्रचारक का अनुपम जीवन था। जनता तक अपने आशय को बताने हेतु एवं सन्मार्ग दिखाने हेतु तथा 'प्रचारक के कर्त्तव्य को पूर्ण सुगमता से निभाने हेतु आपको गुरु जी के सन्देश पर आधारित अपनी मौलिक रचना करनी पड़ी।...सभी कवित्त-सवैये इसी यत्न से पैदा हुए।'[४०]

भाई गुरदास की उक्त तीनों रचनाएँ गुरमत काव्य की महत्त्वपूर्ण निधि हैं। इन रचनाओं द्वारा भाई गुरदास ने पंजाबी बोली को साहित्यिक रूप प्रदान किया और गुरु-

मत-साहित्य को प्रौढ़ता प्रदान की। 'साहित्य समाज का दर्पण है' की उक्ति इनके वार-साहित्य पर अक्षरशः चरितार्थ होती है। आपने तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक स्थिति का खुले रूप से चित्रण किया है। 'कविता अनुभूति की अभिव्यक्ति है अथवा आत्मा की वाणी की कविता है' इसका साक्षात् प्रमाण भाई गुरदास कृत कवित्त-सवैये हैं।' संस्कृत के श्लोक आपकी विद्वत्ता व प्रतिभा का उज्ज्वल प्रमाण हैं। आपकी रचनाएँ गुरमत-साहित्य की शिरोमणि हैं।

आदिग्रन्थ-सम्पादन

गुरुग्रन्थ साहित्य और भाई गुरदास की सम्पादन कला — भाई गुरदास तीसरे गुरु के समय से ही गुरुओं की वाणी का संग्रह करने में लगे हुए थे। गुरमत का प्रचार करते समय वे गुरवाणी द्वारा सिक्ख संगतों को निहाल करते थे। लेकिन पंचम गुरु अर्जुन देव के समय में उनके द्वन्द्वी भाई पृथीमल के पुत्र मनोहर ने गुरु की वाणी की नकल रूप एक ग्रन्थ का संग्रह आरम्भ किया, तब गुरु अर्जुनदेवजी ने गुरुओं की असली वाणी को प्रकाश में लाने हेतु एक ग्रन्थ का सम्पादन करने की सोची। 'कई वर्षों की कालना (परिश्रम) के पश्चात् जब सारी वाणी इकट्ठी हो गई, तब उसे संशोधित कर और रागों के अनुसार क्रम देकर अन्तिम रूप में लिखने का काम भाई गुरदास के सुपुर्द किया गया।'[४१] भाई गुरदासजी की विद्वत्ता और प्रतिभा का प्रभाव गुरुजी पर पड़ चुका था और गुरु घर के सर्वप्रिय सेवक व गुरुवाणी के प्रेमी और गुरमत को गहराई से जानने वाले भाई गुरदास गुरु की आज्ञा को शिरोधार्य कर इस पुण्य कार्य में सहर्ष जुट गए। 'वाणी को संकलित करने का कार्य सचमुच बहुत महान था और उसे पूर्ण करने हेतु भाई गुरदास का चुनाव भी सराहनीय था। इससे भाई गुरदास के गौरव में बहुत वृद्धि हुई।'[४२] यह कार्य लगभग एक वर्ष के अन्तर्गत सम्पूर्ण हो गया। 'अन्त में सम्मान और सजधज के साथ संवत् १६६१ भादों सुदी एकम की सुबह (सन् १६०४) को प्रथम बार बीड़ का प्रकाश श्री हरमन्दिर साहिब में हुआ। सबसे पहले मुख्य ग्रन्थी बाबा बुड्ढा जी नियत हुए।'[४३] जिन दिनों यह बीड़ तैयार हो रही थी, उन दिनों भाई गुरदास और गुरु अर्जुनदेव अमृतसर के दक्षिण दिशा के निर्जन प्रान्त में रामसर के स्थान पर बैठ गए। तम्बू लगाकर जंगल में मंगल मनाया। सभी शिष्यों को वहाँ आने की मनाही कर दी गई। सभी भक्तों की वाणी, जो गुरमत सिद्धान्तों के अनुकूल थी, उसमें दर्ज की गई। कहा जाता है कि एक बार गुरुजी ने भाई गुरदास को कहा कि आप भी अपनी वाणी ले आओ, ताकि अन्य भक्तों के साथ वह भी दर्ज हो जाए। 'तब भाई साहिब ने प्रार्थना की कि मैं तो आपका और आपके प्रिय भक्तों का दास हूँ। दास की वाणी साहिब की बराबरी मैं नहीं बैठ सकती। श्री गुरुजी प्रसन्न हुए और वर दिया कि तुम्हारी वाणी गुरवाणी की कुंजी होगी।'[४४] वस्तुतः जो गुरमत सिद्धान्तों की व्याख्या भाई गुरदास ने अपनी वाणी में की है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। निश्चय ही आप सम्पादन (संकलन) कला, गुरमत ज्ञान और विद्वत्ता की त्रिवेणी हैं।

६. भाई गुरदास सिक्ख मनीषी और दार्शनिक के रूप में

भाई गुरदास सिक्ख धर्म के एक अनन्य अनुयायी,सच्चे गुरु, सेवक, अनुपम शिष्य, आदर्श प्रचारक व निष्काम भक्त थे। इतना ही नहीं, आप एक आध्यात्मिक निष्ठावान, कवि, सम्पादक, व्याख्याता और उपदेशक भी थे। आपकी प्रतिभा और सामर्थ्य देखकर आश्चर्य होता है कि आप इतना सब कैसे करते होंगे। दो ही बातें स्पष्ट रूप से सामने आती हैं—आपकी विद्वत्ता का प्रभाव और गुरु-चरणों के प्रति अटूट श्रद्धा। सुरिन्दरसिंह कोहली के अनुसार 'आपके अन्दर गुरु के लिए अटूट और असीम श्रद्धा थी, आपका साध-संग में दृढ़ विश्वास था। गुरवाणी आपके लिए अद्वितीय प्रकाश का कोश थी। गहरे विश्वासों ने काव्य-रचना के लिए आपको प्रेरणा दी।'[४५] देश देशान्तरों के भ्रमण से आपने बहुत कुछ सीखा आपने अनेक स्थानों पर विद्वानों से संवाद करके अनेक बातों का खण्डन-मण्डन किया। आपका ज्ञान बहुत कुछ अनुभवाधारित भी है। काशी में रहकर आपने संस्कृत भाषा सीखी और उसके साहित्य का ज्ञान अर्जन किया। आगरा में रहकर ब्रजभाषा सीखी और काव्य-रचना भी ब्रजभाषा में की।' सतगुरुजी आप समय-समय पर इनकी कविता सुनते, टीका टिप्पणी करते तथा और ऊँचाई की रंगत देते। सद्‌गुरुजी ने भाई साहिब को पूर्ण कलाकार बनने की बखशिश की।'[४६] आपकी रचनाओं को देखकर ऐसा लगता है कि आप नियमित अध्ययन कर चुके थे, मगर ऐसा नहीं था। बचपन में इतनी उच्च विद्या प्राप्त करना असम्भव होता है, जिसमें रहस्यवादी, आध्यात्मिक, दार्शनिक और साहित्यिक गहनता का आभास हो सके। 'भाई गुरदास जन्मसिद्ध कवि थे। बुद्धि अपूर्व थी, प्रकाश अनुपम था। आप भी उन उच्च दृष्टियों में से एक थे, जिनका समय-समय अनुसार दुनियाँ में किसी न किसी स्थान पर प्रकाश होता रहता है, जो विद्या अधिष्ठाता होती है।'[४७] भाई गुरदास इन्हीं में से थे। आप आरम्भ से ही गुरु चरणों के सेवक रहे, तभी से लग्न लगी, जो आजीवन टूट न सकी। विद्या प्राप्त करना एक बहाना मात्र था। विद्या तो आपको अमर रूप में मिल चुकी थी। आपकी विद्वत्ता आपकी रचनाओं में स्पष्ट झलकती है। आपकी इन्हीं रचनाओं के आधार पर आपकी विद्वत्ता का अनुमान लगाते हुए यह कहा जा सकता है कि 'गुरुघर में भाई साहिब का वही पद है जो हिन्दू धर्म में वेदव्यास और श्री शंकराचार्य तथा ईसाई धर्म में सेंटपाल का है।'[४८] आपकी रचनाएँ पूर्णतः गुरुमत सिद्धान्तों की व्याख्या करती हैं। अगर आपके कवित्त, सवैये आपकी यथार्थ अनुभूति के आधार पर सत्य के अधिक निकट कहे जा सकते हैं, तो आपकी वारों को गुरुवाणी का भाष्य होने का गौरव प्राप्त है। 'इनकी वाणी के अन्दर गुरु उपमा, सिक्खी सिदक, सिक्ख फिलासफी का विचार कूट-कूटकर भरा हुआ है।'[४९] आपकी रचनाएँ गुरमत काव्य का महत्त्वपूर्ण अंग बन चुकी हैं। आपका साहित्य गुरुमत काव्य के अति निकट हो गया है। आपने अपनी रचनाओं में गुरुमत के सिद्धान्तों का मुक्त कण्ठ से प्रचार एवं प्रसार किया। साहित्य के क्षेत्र में भी इनकी रचनाएँ कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। गुरवाणी की व्याख्या होने के कारण आपकी रचनाओं में आध्यात्मिक पुट अधिक है। मगर वैयक्तिकता, मौलिकता व आधुनिकता की भी पूर्ण विद्यमानता है। सर्वत्र यथार्थता फूट-फूट कर बाहर आती है।

सन्दर्भिका

१. भाई गुरदास, कवित्त-सवैये सटीक भाई गुरदास जी (पंजाबी), सम्पा० ज्ञानी बिशनसिह (अमृतसर : भाई जवाहरसिंह कृपालसिंह एण्ड को०, १६७६), पृ० (ख).
२. भाई गुरदास, कवित्त भाई गुरदास (दूसरा स्कन्ध) सम्पा० भाई वीरसिंह, (अमृतसर : खालसा समाचार, १६८० ई०), पृ० २६.
३. सरदूलसिंह, भाई गुरदास (पटियाला, भाषा-विभाग पंजाब, १६६१) पृ० ५.
४. रणधीरसिंह, भाई गुरदास भल्ले दा जीवन, पंजाबी दुनियां, सम्पा० लालसिंह (भाई गुरदास अंक) (पटियाला : भाषा-विभाग पंजाब, १६६८). पृ० २.
५. तारनसिंह, भाई गुरदास, पंजाबी साहित्य दा इतिहास, (पहला भाग) सम्पा० सुरिन्दरसिंह कोहली (चण्डीगढ़ : पंजाब यूनी० पब्लिकेशन ब्यूरो, १६७३) पृ० ३३६.
६. रणधीरसिंह, भाई गुरदास भल्ले दा जीवन, पंजाबी दुनियां, सम्पा० लालसिंह, (भाई गुरदास अंक), (पटियाला : भाषा-विभाग पंजाब, १६६८), पृ०२.
७. सरदूलसिंह, भाई गुरदास (पटियाला : भाषा-विभाग पंजाब, १६६१) पृ० ६.
८. वही, पृ० ६.
६. भाई गुरदास, कवित्त भाई गुरदास (दूसरा स्कन्ध), सम्पा० भाई वीरसिंह, (अमृतसर : खालसा समाचार १६८०), पृ० २७.
१०. सरदूलसिंह, भाई गुरदास (पटियाला : भाषा-विभाग पंजाब), १६६१, पृ० ८,
११. वही, पृ० १०-११
१२. रणधीरसिंह, भाई गुरदास भल्ले दा जीवन, पंजाबी दुनियाँ, सम्पा० लालसिंह, (भाई गुरदास विशेषांक) (पटियाला : भाषा-विभाग पंजाब, १६६८), पृ० ५.
१३. दलीपसिंह दीप, भाई गुरदास (पटियाला : भाषा-विभाग पंजाब १६८१) पृ० १३
१४. वही, पृ० ८.
१५. साहिबसिंह अरशी, सुखमनी साहिब का आलोचनात्मक अध्ययन (जींद : अरोड़ा पब्लिशर्ज, १६७३), पृ० ३.
१६. वही, पृ० ३.
१७. रणधीरसिंह, भाई गुरदास भल्ले दा जीवन, पंजाबी दुनियां, सम्पा० लालसिंह (भाई गुरदास विशेषांक), (पटियाला : भाषा-विभाग पंजाब, १६६८), पृ० ७.
१८. सरदूलसिंह, भाई गुरदास (पटियाला : भाषा-विभाग पंजाब, १६६१) पृ० ८०.
१६. वही, पृ० ३६.
२०. वही, पृ० ७४.
२१. भाई सन्तोषसिंह, 'गुरुप्रताप सूरज ग्रन्थ' (जिल्द-४), (पटियाला : भाषा-विभाग पंजाब, १६७४), पृ० १४-१५.

२२. भाई गुरदास, कवित्त भाई गुरदास' (दूसरा स्कन्ध), सम्पा० भाई वीरसिंह (अमृतसर : खालसा समाचार, १९८०) पृ० ६८.
२३. सन्तोखसिंह, गुरुप्रताप सूरज (पटियाला : भाषा-विभाग पंजाब १९७४)
२४. तारनसिंह, भाई गुरदास, पंजाब यूनी० पंजाबी साहित्य दा इतिहास, सम्पा० सुरिन्दरसिंह कोहली (चण्डीगढ़ : पंजाब यूनीवर्सिटी पब्लिकेशन ब्यूरो, १९७३), पृ० ३४३.
२५. रतनसिह जग्गी, भाई गुरदास जीविनी ते रचना, (पटियाला : पंजाबी यूनी०, १९७४) पृ० ३७.
२६. वही, पृ० ३७.
२७. वही, पृ० ३९.
२८. सरदूलसिंह, भाई गुरदास (पटियाला : भाषा-विभाग पंजाब, १९६१) पृ० ८१.
२९. दलीपसिंह दीप, भाई गुरदास (पटियाला : भाषा-विभाग, पंजाब, १९८१), पृ० २०.
३०. तारनसिंह, गुरबाणी दीआ विआखिया प्रणालियाँ, (पटियाला; पंजाबी यूनी० १९८०), भूमिका पृ० ५.
३१. वही, पृ० ४८.
३२. तारनसिंह, भाई गुरदास, पंजाब यूनी० पंजाबी साहित्य दा इतिहास, सम्पा० सुरिन्दरसिंह कोहली (चण्डीगढ़ : पंजाब यूनी० १९७३), पृ० ३६१.
३३. वही, पृ० ३४०.
३४. वही, पृ० ३४८.
३५. वही, पृ० ३४९.
३६. रत्तनसिंह जग्गी, भाई गुरदास; जीवनी ते रचना (पटियाला : पंजाबी यूनीवर्सिटी १९७४), पृ० ३५.
३७. वही, पृ० ३४.
३८. भाई गुरदास, कवित्त भाई गुरदास (दूसरा स्कन्ध) सम्पा० भाई वीरसिंह (अमृतसर खालसा समाचार, १९८०), पृ० १३
३९. रत्तनसिंह जग्गी, भाई गुरदास जीवनी ते रचना (पटियाला : पंजाबी यूनीवर्सिटी, १९७४), पृ० ३६.
४०. तारनसिंह, भाई गुरदास, पंजाब यूनी०, पंजाबी साहित दा इतिहास, सम्पा० सुरिन्दरसिंह कोहली (चण्डीगढ़ : पंजाब यूनीवर्सिटी, १९७४), पृ० ३४१.
४१. रत्तनसिंह जग्गी, भाई गुरदास जीवनी ते रचना (पटियाला : पंजाबी यूनीवर्सिटी, १९७४), पृ० १८.
४२. वही, पृ० १८.
४३. सरदूलसिंह, भाई गुरदास (पटियाला : भाषा-विभाग पंजाब, १९६७), पृ० २२.
४४. भाई गुरदास, कवित्त भाई गुरदास (दूसरा स्कन्ध), सम्पा० भाई वीरसिंह, (अमृतसर : खालसा समाचार, १९८०), पृ० ४४.

४५. तारनसिंह, भाई गुरदास, पंजाबी यूनी० पजाबी, साहित दा इतिहास, सम्पा० सुरिन्दरसिंह कोहली (चण्डीगढ़ : पंजाब यूनीवर्सिटी, १९७३), पृ० ३४२.

४६. सरदूलसिंह, भाई गुरदास, (पटियाला : भाषा-विभाग पंजाब, १९६१), पृ० २२-२३.

४७. वही, पृ० ५.

४८. भाई गुरदास, कवित्त-सवैये सटीक भाई गुरदासजी, सम्पा० गियानी विशनसिंह (अमृतसर : जवाहरसिंह कृपालसिंह ऐण्ड को०, १९७६), भूमिका.

२ | भाई गुरदास : युग और परिवेश

साहित्यानुभूति परिस्थिति-जन्य होती है। काल की अविरल धारा को साहित्यकार कालखण्डों में बाँटकर अपना अभिमत कलात्मक दृष्टि द्वारा प्रस्तुत करता है। आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी का कथन है कि कालबोध लेखकसापेक्ष होता है, क्योंकि लेखक की कृति दुहरा उत्तरदायित्व निभाती है, एक ओर कृति का अपना रचना-संसार होता है तो दूसरी, ओर वह बाह्य परिवेश अर्थात् तत्कालीन युगीन परिस्थितियों की अनुगामिनी होती है। प्रस्तुत अध्याय में हमारी इस यात्रा के प्रतिनिधि यात्री भाई गुरदास का कृतित्व और व्यक्तित्व युगीन परिस्थितियों द्वारा निखरा है। इसके निखार में कहीं राजनीति सक्रिय है, तो कहीं सांस्कृतिक परम्परा। हमारा प्रस्तुत प्रयास इन सन्दर्भों को निम्नलिखित उपशीर्षकों द्वारा आलोकित करता है।

सामाजिक अवस्था

प्रत्येक साहित्यकार रचना-कार्य के समय अपने समाज तथा चारों ओर के वातावरण के प्रति पूर्णरूपेण सचेष्ट होता है। किसी भी काल के साहित्य में उसकी झलक देखी जा सकती है। मध्यकालीन साहित्य भी इसका अपवाद नहीं है। बाहर से आए आक्रमणकारियों ने राजनैतिक दृष्टि से तो भारत को प्रभावित किया ही, साथ ही इसे आचार-व्यवहार से सामाजिक दृष्टि से भी पतनोन्मुख कर दिया। समाज के रीति-रिवाजों, खान-पान, रहन-सहन, बोली, साहित्य और संस्कृति का क्रमशः आदान-प्रदान होना स्वाभाविक बात थी। धार्मिक कर्मकण्डों में विषमता होते हुए भी समन्वय की भावना पनपी। फलस्वरूप भक्ति-आन्दोलन ने जोर पकड़ा। समाज में हिन्दू और मुस्लिम दो ही प्रमुख जातियाँ थी। जाति-प्रथा प्रधान थी। लोग एक दूसरे को घृणा की दृष्टि से देखते थे। भक्ति-आन्दोलन के धार्मिक सन्तों तथा गुरुओं ने रूढ़ियों को तोड़ने का सफल प्रयास किया। मुसलमान शासक हिन्दुओं पर निर्मम अत्याचार करते थे। वे सम्पूर्ण हिन्दू समाज को मुसलमान बना देना चाहते थे। सभी जानते हैं कि मुसलमान कैसे विजित मनुष्यों की खोपड़ियों के मीनार चिनाते रहे और अपनी विजय की खुशी में एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते रहे। विजय के कारण कई शहरों के मन्दिरों को मस्जिदों में बदल दिया गया और वहाँ के हिन्दू निवासियों को कई दशाओं में बिना भेद तलवार के घाट उतार दिया गया।[1] ऐसे ही समाज में दास-प्रथा एक अन्यतम बुराई के रूप में विद्यमान थी। बाल-विवाह और परदा-प्रथा इसी की देन हैं। शासक वर्ग अपनी इच्छापूर्ति के लिए

कुछ भी कर सकता था।' मुस्लिम शासन के दीर्घ काल में हिन्दुओं की दशा अत्यन्त तरस के योग्य थी। और इन्हें प्रत्येक मुसलमाल अपना दास ही समझता था।'[२] भारतीय कर्मकाण्ड, रीति-रिवाज व परम्परागत रूढ़ियाँ वर्ण-व्यवस्था को अत्यन्त जटिल बना रहे थे। इसके विपरीत मुसलमानों ने अपने धर्म के दरवाजे सभी के लिए खोल दिए थे। हिन्दू समाज की दशा अत्यन्त शोचनीय थी। शासकों के अत्याचारों और पारस्परिक फूट ने लोगों की नाक में दम कर रखा था। 'बहुत से तो धर्म को त्याग कर मुस्लिम मत में शामिल हो रहे थे। न केवल शूद्र ब्राह्मणों से तंग आकर मुस्लिम मत धारण कर रहे थे, अपितु क्षत्रिय भी अपनी जायजाद और इज्जत बचाने के लिए मुसलमान बन रहे थे।'[३] हिन्दुओं ने अपनी सभ्यता और संस्कृति की सुरक्षा हेतु अपने नैतिक सिद्धान्तों का प्रचलन आरम्भ किया। धर्म के अनेक रूप जनता के सामने आए। परिणमस्वरूप भक्ति-आन्दोलन का प्रादुर्भाव हुआ। धार्मिक सन्तों और गुरुओं के सत्प्रयत्नों से दोनों संस्कृतियों, सभ्यताओं और धर्मों का समन्वय हुआ। उन्होंने समाज की रूढ़ियों आडम्बरों और कुप्रथाओं का निषेध किया। 'समाज को सुधारने के लिए सती-प्रथा और परदे के रिवाज से भी सिक्खों को रोका गया। जाति-पाँति का भ्रम मिटाकर कई अन्तर्जातीय विवाह किए।'[४] उस समय ब्राह्मणवाद के प्रभाव के अन्तर्गत लोग एक-दूसरे वर्ग से घृणा करने लगे थे। ब्राह्मणों ने अपना प्रभाव बनाए रखने के लिए लोगों को गलत मार्ग पर लाकर खड़ा कर दिया था। लोग ऊँच-नीच की दृष्टि से धार्मिक कट्टरता में बँध चुके थे। समन्वय के अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग न था। कई बार तो ऐसा होता था कि 'विशेषतः ब्राह्मण का भोजन जहाँ पर पक रहा है, अगर वहाँ शूद्र की परछाईं पड़ जाए तो भोजन अशुद्ध हो जाता था।'[५] जाति-प्रथा के जटिल नियमों को गुरुओं व धार्मिक नेताओं ने तोड़ा था। उन्होंने 'संगत' व 'पंगत' का सिद्धान्त देकर भगवान के नाम का अधिकारी सबको बनाया। कबीर, नानक आदि भक्तों ने 'जाति-पांति' का भेदभाव मिटाकर समन्वय करके एक मानव-धर्म की स्थापना की। मध्यकालीन भारतीय स्थितियों में जब भिन्न-भिन्न सामाजिक वर्गों की विचारधारा धार्मिक वैचारिक सीमा से बाहर नहीं जाती थी, तब एक धर्म का दूसरे धर्म के प्रति वैचारिक संघर्ष आरम्भ हो जाता था।'[६]

भाई गुरदास ने अपनी रचनाओं के माध्यम से उस युग की सामाजिक अवस्था का चित्रण बड़े स्पष्ट शब्दों में किया है। 'हिन्दुओं में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार जातियाँ थीं। और मुसलमानों में शीआ, सम्मी, हाफजी और इमामशाही—चार सम्प्रदाय। भाई गुरदास ने बताया है कि लोग भगवान को छोड़कर शैतान के रास्ते पर चल रहे थे।'[७] ऐसे समय में किसी न किसी महापुरुष द्वारा जनता का मार्ग-दर्शन किया जाता है और उन्हें सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त किया जाता है। लेकिन उस समय के धार्मिक नेता और धर्म दोनों डगमगा रहे थे। नैतिकता का ह्रास हो चुका था। सत्य मार्ग अदृश्य हो गया था। दो संस्कृतियों का सीधा सम्पर्क था। दोनों एक दूसरे को प्रभावित करना चाहती थीं। मूलतः दोनों जातियाँ एक दूसरे की विरोधी थीं। 'राजाओं अथवा बादशाहों का जीवन लोगों से उच्च होना चाहिए। और प्रजा की हर प्रकार से रक्षा करना उनका कर्त्तव्य होता है, परन्तु उस समय राजाओं की अवस्था भी विपरीत थी। वे स्वयं पाप

करते थे। बाड़ बनकर प्रजा रूपी खेत की रक्षा करने के स्थान पर वे इसके विपरीत स्वयं उसे ही खा रहे थे। प्रजा पर जुल्म कर रहे थे।'[८] समाज की छोटी इकाई मानव है। मानव का भाईचारा ही समाज का निर्माण करता है। भाई गुरुदास ने मानव को व्यक्तिगत रूप से अपने आप को सन्मार्ग पर लाने के लिए गुरु के महत्त्व पर बल दिया है। और कहा कि गुरु की आज्ञा कापालन करने पर ही मनुष्य जीवन सुधर सकता है। 'अच्छे मनुष्य की एक संज्ञा गुरमुख है। इस प्रकार के जीवन वाले व्यक्तियों का समूह सचमुच इस धरती का भार हरने वाला है। इसके द्वारा मनुष्यता की सर्वांगीण उन्नति सम्भव हो सकती है।'[९] भाई गुरुदास ने अपनी छटी वार में लिखा ही है—

'गुरमुखि सुख फलु पिरम चखदे'[१०] ॥६/३

गुरमुख समाज का निर्माण करता है, तो इसके विपरीत मनमुख जो दुष्ट और भ्रष्ट है, वह समाज को भी भ्रष्टाचार के गर्त में ले डूबता है। मगर सम्मान गुरमुखों को ही मिलता है और उन्हीं के आधार पर समाज का नव-निर्माण होता है। 'ऐसे सुलझे हुए व्यक्तियों से भाई गुरदास ने अपने आपको न्यौछावर करने के लिए तैयार बताया है। जिन गुणों की उन्होंने अच्छे पुरुषों में कल्पना की है, वे वास्तविक सामाजिक गुण हैं और ऐसे गुणों वाले व्यक्तियों का समाज सचमुच धन्य हो सकता है।[११] इस प्रकार गुरमुख की स्थापना करके मानव के माध्यम से वे आदर्श समाज की काल्पनिकता को आधार देना चाहते थे। उनकी रचनाओं के आधार पर स्पष्ट पता चलता है कि तत्कालीन सामाजिक अवस्था पतनोन्मुख थी।

राजनैतिक अवस्था

मध्यकाल में १५वीं-१६वीं शती में दिल्ली पर लोधी वंश का शासन था। उन्होंने भी अपने पूर्ववर्ती शासकों के समान भारतीयों को भिन्नता की दृष्टि से ही देखा। सिकन्दर लोधी ने (१४८८-१५१७) जो कि दिल्ली का शासक था, १६वीं शती के आरम्भ में हिन्दुओं पर अनेक पाबन्दियाँ लगा दीं।[१२] हिन्दुओं के साथ सौतेली माँ का व्यवहार किया जाने लगा। हिन्दुओं को 'जजिया' कर और 'तीर्थस्थान कर' इसीलिए देने पड़ते थे, क्योंकि वे हिन्दू थे। मुसलमानों पर किसी भी प्रकार की पाबन्दी न थी। उन्हें राजदरबार में पूरा सम्मान मिलता था। 'मुसलमान शासकों के जुल्म दिन प्रतिदिन बढ़ रहे थे। अत्यन्त जुल्म पीड़ित और गुलामी की जंजीरों में जकड़े बेबस हिन्दू नैतिक तौर पर मर रहे थे।'[१३] छोटे-छोटे राज्यों के अधिकारी एक दूसरे को अपनी शक्ति दिखाने के लिए जनता को व्यर्थ ही में परेशान कर रहे थे। सामन्तीय व्यवस्था निम्न वर्ग को निगल रही थी। दासवृत्ति की जड़ें फैल गई थीं। शासकों के पिट्ठू जनता की ओर ध्यान न देकर धन बटोरने में लगे थे। 'तत्कालीन राजनैतिक समाज में जमींदारों का जमीन पर आधिपत्य होना, उच्चाधिकारों की प्राप्ति, धरती पर या उसकी उपज पर अधिकार उस समय की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात थी।'[१४] इन जमीदारों को शासक वर्ग की ओर से जागीरें अथवा नकद धन प्राप्त होता था। 'मनसबदारी' प्रथा का प्रचलन तत्कालीन राजनैतिक व्यवस्था का एक प्रमुख अंग थी। सम्राट् की ओर से प्रदत्त धरती में से या

इलाके में से 'मनसबदार' आय, कर और दूसरे प्रकार का निर्धारित उपज के रूप में कर एकत्र करते थे। कर आदि न चुकाने पर सब कुछ नीलाम कर देने का विधान भी था। समाज की उच्च, मध्य और निम्न तीन श्रेणीयाँ थी। शासक वर्ग उच्च वर्ग में था, सामन्त, जागीरदार और 'मनसबदार' मध्यवर्ग में और शेष जनता निम्न वर्ग में थी। शासक वर्ग विलासिता में डूबा हुआ था। जनता शोषित की जा रही थी। खोखले हर्ष में आपसी कलह के कारण राज्य शक्ति क्षीण होती जा रही थी। निम्न वर्ग के लोग निर्धनता के कारण दुर्व्यसनों से दूर थे। शासक वर्ग में नारी और मदिरा दो ही प्रिय वस्तुएँ थीं। अमीर हिन्दुओं की आमदन कम करने हेतु उन्हें टैक्स आदि लगा दिए जाते थे, जो कि अन्याय था।[15] इसके अतिरिक्त, अन्याय, बेईमानी, रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार और दुर्व्यसनों से उस समय का शासक वर्ग घिरा हुआ था।

भाई गुरदास की रचनाओं, विशेष रूप से वारों, के माध्यम से तत्कालीन राज-राजनैतिक अवस्था स्पष्ट रूप से सामने आती है। इसका कारण उनका 'आदिग्रंथ' का सम्पादन कार्य है। गुरुवाणी में संकलित भक्तों की वाणियों से स्पष्ट है कि 'उन्हें राज्य की ओर से कुछ कष्ट दिए गए, पर भक्तों ने उन्हें अपने सिर माथे पर सहन किया और समय के राज्य-प्रबन्ध के विषय में कोई राय प्रकट नहीं की।[16] भाई गुरदास ने अपनी वारों में तत्कालीन राजाओं के भ्रष्टाचार का नग्न चित्र प्रस्तुत किया है। प्रथम वार को तो तत्कालीन राजनैतिक स्थिति का दर्पण ही कहा जा सकता है।

> **'भए बेअदली पातशाह**
> **व्यक्ति करती उमराव कमाई'** । १/१४ ॥[17]

इतना ही नहीं,

> **'काजी होए रिशवती,**
> **वड्डी ले के इक गहाई।' १/७१ ॥**[18]

भाई गुरदास जी ने ऐसे राजाओं को प्रजा का स्वामी मानने से इन्कार कर दिया और उन्हें कूड़ा बताकर एक सत्य रूप ईश्वर को ही बादशाह माना, जो इन बादशाहों का भी स्वामी है। 'सतगुर सच्चा पातिशाह, कूड़े पातशाह दुनियावै।'[19] भाई गुरदासजी ने ऐसे राजाओं के सेवकों को मनमुख कहा और सच्चे गुरु के भक्तों को गुरमुख। उन्होंने मनमुखों को पशुओं से भी नीच कहा और नीच, हंकारी, धंजकोलोभी राजाओं को कुत्ते तक कहने में भी संकोच नहीं किया।

> **'मनमुख मानस देह ते, पशु परेत अचेत चगेरे।**
> **कुत्ता राज बहालीऐं, चक्की चटन छाई औरे॥**[20]

भाई गुरदासजी का अभिप्राय यह है कि जो राजा ही नीच हो, तो वह प्रजा की क्या देखभाल करेगा। 'यथा राजा तथा प्रजा' के अनुसार प्रजा को भी उसके रहम पर छोड़ा होता, तो कुछ और बात थी। राजा लोग ही भ्रष्टाचार फैलाने में लगे हुए थे। धर्म के नाम पर जनता का शोषण हो रहा था। गुरुओं और भक्तों की मर्यादा समाप्त हो रही थी। ऐसे में सिक्ख धर्म के प्रवर्तक नानक, कबीर आदि ने अगर धर्म की पतवार न सम्भाली होती, तो सम्भवतः भारतीय सभ्यता और संस्कृति रूपी नौका डूब चुकी होती।

इसी धर्म-प्रचार के कारण लोगों की आँखें खुलीं; उन्हें आशा की किरण दिखाई दी; गुरु-परम्परा चली और सिक्ख धर्म की स्थापना हुई। कई शूरवीर बिना वेतन काम करने के लिए छठे गुरु की सेना में आ इकट्ठे हुए।'[२१] धर्म के साथ-साथ कर्म भी प्रधान हुआ। भक्ति के साथ शक्ति का भी सुमेल हुआ। भारतवर्ष में यह एक नई रीति थी कि कोई भाईचारा जिस पर राज्य की ओर से जुल्म हुए हों, अपनी रक्षा आप कर सकता है।'[२२] भाई गुरदासजी ने स्पष्ट रूप में लिखा है कि रक्षक ही भक्षक हो रहे थे। जब बाड़ ही खेत को खा जाए, तो और कोई कितना बचाएगा।

'आगू ले उजड़ पवै, किस करै पुकारा।
जेकर खेते खाह वाड़, को लहे न सारा।'[२३]

'ऐसी अवस्था में कोई सच्चा गुरु ही भटकती और ज्ञान से अन्धी जनता का मार्गदर्शन कर सकता है। लेकिन जनता की बाँह पकड़ने को कोई तैयार नहीं था। गुरु नानकदेवजी ने यह पुण्य कार्य किया। उन्होंने देखा कि समाज में मानव-धर्म की शिक्षा होना अनिवार्य है। भले ही उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से तत्कालीन राज्य-व्यवस्था पर आलोचना नहीं की है, तो भी उनकी वाणी में तत्कालीन प्रवृत्तियों का चित्रण आकस्मिक रूप से हो गया है।

'बाबर वाणी के सम्बन्ध में उच्चरित शब्द उनका देश के प्रति प्रेम प्रकट करते हैं और देशवासियों की दुर्गति देखकर उनका हृदय द्रवित हो जाता है।'[२४] उस समय के अनेक प्रकार के अत्याचार और गुरुओं तथा सन्तों पर किए गए निर्मम प्रहार ही भारतीय संस्कृति और समाज की ढाल का काम कर रहे थे। भारतीयों की सहनशीलता और अदम्य साहस ही उन्हें दृढ़-मन किए हुए था, अन्यथा मुसलमानों ने कोई कसर न छोड़ी थी। कहने की बात नहीं, इतिहास साक्षी है। जितने अत्याचार मुसलमानों ने अपने शासनकाल में भारतीयों पर किए उसका उदाहरण अन्यत्र नहीं मिलता है। जज़ीआ आदि टैक्स लगाकर जनता का शोषण किया जाता था। यही शोषण एक दिन शोषक को ह्रास की ओर ले जाता है। 'तीसरी पातशाही जब तीरथ यात्रा के लिए गए तब सिखों सहित जो उनके साथ थे, उन्होंने जज़ीआ देने से इन्कार कर दिया।'[२५] इस प्रकार तत्कालीन राज्यव्यवस्था अस्त-व्यस्त हो चुकी थी। राजा लोग प्रजा का शोषण करने लगे थे। धर्म-कर्म की नैया डगमगा रही थी। गुरु-परम्परा के आधार पर सिक्ख धर्म गुरुमत द्वारा अपने प्रयत्नों से लोगों का मार्गदर्शन कर रहा था। भाई गुरदास प्रभृति अनेक विद्वानों ने जन भाषा में साहित्य रचकर तथा स्थान-स्थान पर जाकर गुरुमत का प्रचार किया और अदम्य साहस भरा। छठे गुरु के आगमन ने इस धर्म को एक नई दिशा दी। गुरु अर्जुनदेव की शहीदी उन ज़ालिम शासकों की निर्दयता का प्रत्यक्ष प्रमाण है। कोई भी भारतीय उनकी शहादत से अनभिज्ञ नहीं है। 'गुरु अर्जुन देव की शहीदी के पश्चात् गुरु हरगोविन्द जी ने सेली टोपी के स्थान पर मीरी और पीरी की दो तलवारें धारण कीं और सिक्खों को हथियारों का प्रयोग सिखाना आरम्भ किया, तो कई गुरु सिक्खों के मन में संशय पैदा हो गए।'[२६] लेकिन गुरुओं ने इसकी आवश्यकता पर बल दिया और सत्य मार्ग पर चलते हुए लोगों को निर्भीक बनाया। कर्म करते हुए

ईश्वर भक्ति को पाने का सन्देश दिया। जंगलों में जाने की अपेक्षा समाज में रह कर उसकी कुरीतियों को दूर करने का आदेश दिया। 'इनके विचारों का ही प्रभाव था कि अनेक शूरवीर बिना वेतन के काम करने के लिए छठे गुरु जी की सेना में आ एकत्र हुए।'[२७] भाई साहब ने अपनी वारों में तथा यदा-कदा अपने कवित्त-सवैयों में तत्कालीन राजनैतिक अवस्था का चित्रण अवश्य किया है। जिससे तत्कालीन परिस्थितियों का अनुमान सुगमता से ही लगाया जा सकता है।

धार्मिक अवस्था

मध्यकालीन धार्मिक स्थिति अत्यन्त अस्तव्यस्त थी। अनेक धर्म शाखाओं-उपशाखाओं के रूप में अपनी-अपनी डफली, अपना-अपना राग अलाप रहे थे। सिद्धों, नाथों, जैनियों ने अपने नैतिक सिद्धान्तों को भुला दिया था और रति-क्रीड़ा द्वारा 'महासुख' की प्राप्ति में लगे थे। विलासिता सर्वत्र थी। सिक्ख धर्म के प्रवर्तक गुरु नानक, कबीर, चैतन्य महाप्रभु आदि ने इसके विरुद्ध आवाज उठाकर जनता को इन आडम्बरवादी लुटेरों के जाल से मुक्त किया। मुसलमान पूर्णतः यहाँ समा चुके थे। उन्होंने भी इस परिस्थिति का उपयोग किया और अपना धर्म-प्रचार आरम्भ किया। फलस्वरूप 'भारतीय और मुस्लिम सभ्यचारों की टक्कर से धार्मिक सिद्धांतों में भी परिवर्तन आया। अद्वैतवादी हिन्दू और एकेश्वरवादी मुसलमानों के मेल से निर्गुण सम्प्रदाय का जन्म हुआ। भक्तों ने मूर्तिपूजा का खण्डन किया।'[२८] सिक्ख धर्म के उद्भव से समाज और धर्म दोनों को सुरक्षा प्राप्त हुई। वह समस्यामूलक स्थितियों का समाधान प्रस्तुत करता है।' १५०१ ई० से लेकर १६०१ ई० तक पूरा सौ वर्ष गुरमत के सैद्धांतिक निर्माण में लगा। प्राचीन ब्राह्मण मत, योगमत और तअस्सवी शरा शरीअत पर पूरी-पूरी शान्ति डाली और अपना निराला पंथम स्थापित किया।'[२९] इस धर्म का उद्देश्य जनता को आडम्बरों से मुक्त करना था। भारतीयों के सामने उन की भावनाओं को कुचला जाता था, मगर वह कुछ भी कर सकने में सक्षम न थे। वे उनके कुकृत्यों से भयभीत थे।' 'निर्मम शासकों की पशु-वृत्ति को शान्त करने हेतु हिन्दुओं के पूजनीय स्थान मन्दिर गिराए जाते थे।...शान्ति के समय भी उन हिन्दुओं की किस्मत इतनी अच्छी नहीं थी।'[३०] उनसे मुस्लिम शासकों द्वारा मतभेद किया जाता था। उन्हें अपमानित किया जाता था; उन पर तरह-तरह के दोष लगाकर उन्हें अपराधी ठहराया जाता और उन्हें शहीद कर दिया जाता। पाँचवें गुरु अर्जुनदेव की निर्मम हत्या और शहीदी स्मरण करके किसके रोंगटे खड़े नहीं होंगे।' गुरुजी को दरिया की वरेती में ले जाकर, गर्म रेत डालकर पीड़ित किया गया, उबलते पानी में उबाला गया तथा और अधिक कष्ट देने के लिए रावी के ठण्डे पानी में डुबोया गया।[३१] 'गुरुनानक जाति-पाँति में विश्वास नहीं करते थे। वे परमात्मा के समक्ष सभी को एक समान मानते थे।'[३२] यही कारण था कि उन्होंने कभी किसी भी अपने शिष्य को मतभेद करने दूर रूढ़ियों के उल्लंघन का संदेश दिया। वे धर्म के माध्यम से ही समाज को अनैतिकता से नैतिकता की ओर ले जा रहे थे।

जब गुरु नानकदेवजी का आविर्भाव हुआ, तो भारत धार्मिक दृष्टि से विश्रृंखल

हो चुका था। अनेक मत-मतान्तरों के अधिष्ठाता अपने-अपने सम्प्रदायों के माध्यम से वैदिक, पौराणिक और औपनिषदिक सिद्धान्तों की अपने-अपने ढंग से व्याख्या कर रहे थे। 'अपनी-अपनी डफली, अपना-अपना राग' वाली बात थी। सभी एक दूसरे का खण्डन और अपने मत का मण्डन करने पर लगे थे। एकनिष्ठ होने अथवा समन्वयात्मकता का प्रश्न कोसों दूर था। गुरुनानक, कबीर प्रभृति महापुरुषों के सत्प्रयत्नों से ही लोगों को प्रकाश की किरण दिखाई थी। नानकदेवजी ने सभी भेद-भावों को मिटाकर कुमार्गगामी रूढ़ियों का विरोध कर एक 'मानव-धर्म' की स्थापना की, जिसके अनुसार मनुष्य सत्संगति अथवा गुरु के उपदेश द्वारा उच्चादर्शों को अपना कर ही प्रभु को पा सकता है। अतः उन्होंने सदाचार की नींव पर मानव-जीवन का भवन खड़ा किया। भाई गुरदास ने भी नानक की वाणी और सिद्धान्तों का ही अनुसरण किया है। उन्होंने गुरवाणी की व्याख्या साधारण बोलचाल के शब्दों में प्रस्तुत की। अतः उनके काव्य में धर्म का स्वरूप गुरु नानक जैसा ही था। उनकी रचनाओं में तत्कालीन विकृत धार्मिक अवस्था तथा उसे जो गुरुओं द्वारा नवीन रूप देने के प्रयत्न किए गए, उसका चित्रण स्पष्ट रूप से झलकता है। धर्म की नई व्याख्या और तत्कालीन प्रचलित पाखण्ड और आडम्बरपूर्ण सम्प्रदायों का चित्रण उनके काव्य में यत्र-तत्र मिलता है। भाई गुरुदास के समय तक भारत का धर्म जीर्णावस्था में अपने को समेटे हुए अपना कलेवर बदल कर जनता के सामने आया। प्राचीन धार्मिक परम्पराओं की जटिलताओं को मानव-जीवन की दैनिक प्रक्रियाओं एवं अनुभवों के साथ जोड़कर उन्हें स्वाभाविक बना दिया गया। सिक्ख धर्म एक मानव-धर्म की व्याख्या प्रस्तुत करने में सफल सिद्ध हुआ। 'भाई गुरदास ने जो वाणी भी लिखी, उसका मुख्य मनोरथ सिक्खधर्म का प्रचार करना था। उन्होंने अपनी करनी द्वारा जो कुछ किया, उसे ही साहित्यिकता प्रदान की गई। वास्तव में उनके जीवन की सारी गति-विधि ही सिक्खधर्म के प्रचार और प्रसार से सम्बन्धित है।'[३३] भाई गुरदास ने अपने 'वार-साहित्य' में विशेष रूप से प्रथम 'वार' में ही संसार की तत्कालीन धर्म की डगमगाती किश्ती को बचाने हेतु गुरु रूपी नाविक की आवश्यकता बताई है। 'वार बाझु गुरु डूबा जग सारा।'[३४] 'हर तरफ अन्धेरा व्याप्त है। उस समय साधु पुरुष के बिना सांसारिक अवस्था बड़ी गम्भीर हो गई थी और साधु संसार में कोई मिलता नहीं था।'[३५] स्थान-स्थान पर आपकी रचना में तत्कालीन आडम्बरों का वर्णन मिलता है। आपने अपने प्रचार के दौरान इन सबको त्यागकर एक सहज जीवन जीने और गुरु के उपदेश को मानने पर बल दिया है। 'कवित्तों में भी सिक्खधर्म के सार्वजनिक नियमों का ही वर्णन है। जैसे गुरु की आवश्यकता।'[३६] आपने भले ही प्रत्यक्ष रूप से तत्कालीन धार्मिक अवस्था का चित्रण न किया हो, मगर अनेक स्थलों पर प्रसंगवश कहीं न कहीं संकेत अवश्य मिलते हैं। यथा गुरु की आवश्यकता, सिक्खधर्म का महत्त्व, गुरुमत का प्रचार आदि अनेक ऐसे तथ्य हैं जो तत्कालीन धार्मिक स्थिति को उद्घाटित करते हैं। 'आपकी रचना से पता चलता है कि···धार्मिक तअस्सब और अन्याय जोरों पर था, हिन्दुओं में कई सम्प्रदाय और कई प्रकार के धर्म थे। पारम्परिक पूजापाठ, कर्मकाण्ड, दान, स्नान, कथावार्ता आम थे। पूजा का धान खाने की कमजोरी थी।'[३७]

कलियुग में केवल नाम ही आधार है। इस आधार को स्मरण कराने हेतु गुरु अथवा महापुरुष की आवश्यकता है। कलियुग का लक्षण परम्परा का दूर जाना है। मत-मतान्तरों की बहुलता, ग्लानि और आपाधापी है। यही सब तब हो रहा था, जब गुरु नानकदेव ने धरती पर जन्म लिया। भाई गुरदास ने अपनी प्रथम वार में उनके जन्म के पूर्व और तत्कालीन स्थिति का अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में चित्रण किया है।

'सुनि पुकार अन्तर प्रभु गुरु नानक जन माहि पठाइआ।
कलियुग आवे तारिया, सतिनामु पढ़ि मंत्र सुनाइया
कलितारन गुरु नानक आइआ।'[३८]

गुरु नानक ने जब इस धरती पर लोगों को देखा तो धरती पापों से जल रही थी।

'बाबा देखे धिआन धरि जलती सभि पृथ्वी दिसि आई।'[३९]

तब उनके आगमन से जनता के अज्ञान का अन्धकार दूर हुआ। अन्य तारों के समान नकली उपदेश छिप गए और गुरु रूपी सूर्य का प्रकाश प्रकट हुआ। गुरदास जी ने अपने शब्दों में स्पष्ट कहा है।

सतिगुर नानक प्रगटिआ, मिटी धंधु जग चाननु होआ।
जिऊँ करि सूरजु निकलिआ तारे छपे अंधेरु पलोआ॥[४०]

इस प्रकार भाई गुरदासजी के काव्य में यत्र-तत्र तत्कालीन धार्मिक स्थिति का चित्रण उद्घाटित होता है।

सांस्कृतिक अवस्था

संस्कृति के प्रमुख तत्त्व हैं—धर्म, दर्शन, समाज, साहित्य और कला। इन सब के संक्षिप्त अध्ययन से ही भाई गुरदास के साहित्य में वर्णित तत्कालीन सांस्कृतिक अवस्था का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। धार्मिक दृष्टि से उस समय ह्रासोन्मुखी स्थिति थी। भारतीय धर्म, सदाचार और राजसी बल का पतन हो चुका था। इस्लाम का भारत में जोर बढ़ गया था। धार्मिक उत्सव और अन्याय जोरों पर था।[४१] दार्शनिक दृष्टि से सिक्खधर्म ने भारतीय दर्शन को अपनाया तो सही, लेकिन कुछ परिवर्तन के साथ। उन्होंने ब्रह्म, जीव, माया, सृष्टि की नई व्यवस्था प्रस्तुत की, जिनकी तत्कालीन परिस्थितियों के अनुकूल आवश्यकता थी। इन विषयों सम्बन्धी जटिलताओं और रूढ़ियों का पर्दा फाश कर दिया। उस ईश्वर को अलख, निरंजन, निराकार, अभेद बेअन्त कहा गया है। उसकी महिमा को वह भी नहीं पा सके हैं। वे भी नेति-नेति कहकर हार गए हैं। ब्रह्मा और शिव आदि भी उसे नहीं जान सके हैं।

'ब्रह्मा बिसन महेश अन्त न जानिआ।'[४२]

ईश्वर को पाने हेतु गुर का ज्ञान आवश्यक है। गुरु के ज्ञान से ही माया का पर्दा हटता है। तभी ज्ञान के माध्यम से मोक्ष प्राप्त होता है। अतः सिक्खगुरुओं ने भारतीय दर्शन की नई व्याख्या प्रस्तुत की, जो भाई गुरदास वाणी में भी अंकित है। क्योंकि भाई गुरदास की वाणी को 'गुरुवाणी की कुंजी' की संज्ञा प्रदान की गई है। समाज की स्थिति भी डावाँडोल थी। वर्ण और आश्रम व्यवस्था के जटिल नियमों ने और कुमार्गगामी साधुओं

और पाखण्डियों ने लोगों को लूटना आरम्भ कर दिया था। 'मूर्खता, निन्दा, कपट, अच्छाई का विरोध, अपमान, वेश्या-गमन, मद्यपान के अवगुण समाज में थे।'[४३] अतः समाज इन्हीं बुराइयों के कारण पतन के गर्त में गिरता जा रहा था। साहित्य और समाज का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। तत्कालीन पतित समाज को अनेक विद्वानों ने अपने साहित्य में चित्रित किया है और साथ ही एक आदर्श समाज की स्थापना हेतु अपने साहित्य के माध्यम से प्रचार भी किया, कबीर, सूर, तुलसी, जायसी, नानक आदि अनेक ऐसे उदाहरण हैं, जिन्होंने सत्साहित्य रचकर उस समय के समाज का उद्धार किया। भाई गुरदास ने भी अपने साहित्य में जहाँ समाज की स्थिति का चित्रण किया, वहाँ गुरुमत-सिद्धान्तों का प्रचार करते हुए, गुरु, साध-संगत, गुरु सिक्ख, राजा, प्रजा, माता-पिता, पति-पत्नी आदि के आदर्शों पर भी बल दिया है।

गुरु मूरति गुरु सबद है, साध संगत विच परगटी आया।[४४] **२४।२५**

भाई गुरदासजी ने कवित्त-सवैयों के माध्यम से समाज के दुराचार पक्ष को स्पष्ट करते हुए सदाचार एवं शुद्ध व्यवहार पक्ष को सामने लाने का सफल प्रयास किया है। गुरुग्रन्थ साहिब में अच्छे-अच्छे विचार एवं सन्तों की आदेशवाणी का संकलन भी समाज की एकता व सदाचार को स्थापित करने हेतु ही पंचम गुरु ने भाई गुरदास को यह कार्य-भार सौंपा था।

कला की दृष्टि से भी यह काल उन्नत ही कहा जा सकता था। भले ही हिन्दुओं के मन्दिरों को तोड़ा जा चुका था। मगर मुसलमानों के आगमन से संस्कृतियों की मिली-जुली कला का जो नमूना तैयार हुआ, उसकी छाप आज भी उस समय की निर्मित कृतियों व भवनों पर देखी जा सकती है वास्तुकला के क्षेत्र में काफी विकास हुआ, संगीत और चित्रकला में भी काफी विकास हुआ। मुसलमान हस्तकलाओं में निपुण थे। भले ही भाई गुरदास की रचनाओं में उस समय की कला का विशेष रूप से चित्रण नहीं है, तो भी इतना विदित ही है कि प्रचारक के रूप में जहाँ-जहाँ भी भाई गुरदास गए, वहाँ वे गुरुद्वारों का निर्माण कार्य स्वयं करवाते थे। 'गुरु अर्जुनदेवजी ने अमृत सरोवर के पक्का करने और हरमन्दिर का निर्माण करने की जिम्मेदारी भाई गुरुदास और बाबा बुड्ढा जी को सौंपी थी। हरमन्दिर की नींव मुसलमान फकीर मीआ मीर ने रखी थी। भाई साहिब पूरी लग्न और योग्यता से सेवा करते और कराते रहे।'[४५]

अनेक नगरों को बसाने और निर्माण-कार्य करने का काम भी गुरुओं द्वारा भाई गुरदास को ही सौंपा गया। अनेक स्थानों पर करतारपुर, तरनतारन, गोइन्दवाल अमृतसर आदि नगर बसाकर धर्म के साथ-साथ कला को विकसित किया गया। इस प्रकार कहा जा सकता है कि भाई गुरदास के समय में भारतीय संस्कृति का एक प्रकार से पुनर्जागरण हुआ। भारत को एक नई दिशा मिली। धर्म, दर्शन, समाज, कला और साहित्य में नई विचारधाराओं का प्रचार और प्रसार हुआ। सिक्खधर्म के नेताओं ने लोगों का सही नेतृत्व किया तथा हिन्दू धर्म, सभ्यता और संस्कृति की रक्षा की। यही कारण है कि आज अपना उदार हृदय लिए सिक्खधर्म, मानव-धर्म का रूप ग्रहण कर विश्व-धर्म की संज्ञा से अभिहित हो रहा है।

भाई गुरदास के काव्य में तत्कालीन युग-चित्रण

वारें और कवित्त-सवैये—भाई गुरदास की दो ही प्रमुख रचनाएँ मिलती हैं—वारें और कवित्त-सवैये। वारें पंजाबी में हैं और इनकी संख्या में ४० हैं। कवित्त-सवैये ब्रजभाषा की रचना है और उनकी संख्या ६७५ है। इन दोनों रचनाओं की विषय-वस्तु गुरमत सिद्धांतों से ओत-प्रोत है। वारें अगर गुरमत की व्याख्या प्रस्तुत करती हैं, तो कवित्त-सवैये निजी अनुभवों की अभिव्यक्ति। इसमें सन्देह नहीं कि आप एक उच्चकोटि के विद्वान थे। आपका अध्ययन और पर्यटन आपकी रचनाओं में झलकता है। आपका काव्य भाव पक्ष और कला पक्ष दोनों दृष्टियों से काव्य-कसौटी पर खरा उतरता है। 'आपके कवित्तों और वारों में प्रयोग की गई उपमाओं से स्पष्ट है कि आपको भारतीय रहस्यवादी, धार्मिक और साहित्यिक अलंकार प्रणाली का गहरा ज्ञान था।…कवित्त सवैये आपकी संस्कृत और ब्रज की विद्वत्ता और वारें पंजाबी बोली की गहरी सूझ को प्रकट करते हैं।'[४६] काव्य की यह स्वाभाविक विशेषता है कि वह अपने समाज का चित्रण होता है, तो कवि भी तो उसी समाज का ही अंग है। व्यक्ति के जीवन का समाज पर प्रभाव पड़ता है और समाज व्यक्ति को प्रभावित भी करता है। समाज की भलाई वही सोच सकता है, जिसे इसमें रुचि हो। समाज छोड़कर जंगलों, पहाड़ों और एकान्त स्थानों पर चले जाने वाला इसका क्या संवार सकता है ?[४७] 'भाई गुरदास ने भी संसार को छोड़ने की अपेक्षा इसमें रहकर समाज को सुधारने की प्रवृत्ति को ही महत्त्व दिया। वे अपने गुरु के सन्देश को जन-जन तक पहुँचा देना चाहते थे। आपने गुरमत प्रचार हेतु अपना सारा जीवन गुरु के चरणों में अर्पित कर दिया। आप पंजाब से बाहर आगरा, काशी, काबुल, ग्वालियर, उज्जैन, बुहरानपुर, गुजरात, लखनऊ, पटना आदि रहे।'[४८] इसी अनुभव के आधार पर आपने तत्कालीन परिस्थितियों, अवस्थाओं, प्रथाओं, धारणाओं, विश्वासों एवं रूढ़ियों का चित्रण अपने काव्य में किया है। युग या धारा को हम बाँध नहीं सकते। न ही उसका कोई रूप निश्चित होता है। यह तो परिवर्तनशील एवं गतिशील क्षणों का ब्यौरा मात्र होता है। जिसके अनुसार जनता की भावनाओं और चित्तवृत्तियों को तत्कालीन परिस्थितियों के साथ जोड़कर उनका अध्ययन एवं विश्लेषण किया जाता है। कवि या लेखक उसे अपनी रचना में अपने दृष्टिकोण एवं अनुभूति के बल पर स्थान देता है। इसी को साहित्य में अनुभूति की अभिव्यक्ति कहा जाता है। किसी भी काव्य में युग-चित्रण किसी विशेष प्रणाली द्वारा नहीं किया जाता। यह स्वाभाविक रूप से प्रसंगवश होता है। भाई गुरदास के काव्य में भी यत्र-तत्र तत्कालीन युग का चित्रण मिलता है। भाई गुरदास ने अपने युग को अति निकट से देखा था और अत्यन्त सूक्ष्मता से उसका अध्ययन किया था। उन्होंने गुरवाणी की व्याख्या करते समय अपने अध्ययन और अनुभव को साधारण जन-भाषा में समझाने का मौलिक प्रयास किया। तत्कालीन साधुओं और जोगियों की वैराग्य-प्रणाली से मोक्ष पाने की अपेक्षा उन्होंने गृहस्थ में रहकर भगवद् भक्ति करने पर बल दिया। 'त्यागी को भी पेट भरने के लिए और तन के वस्त्रों के लिए गृहस्थी के पास ही माँगने के लिए आना पड़ता है। प्रशंसा देने वाले की होती है, माँगने वाले की नहीं।'[४९] भाई गुरदासजी ने गुरु नानकदेवजी की जोगियों से हुई बातचीत का विवरण देते हुए कहा भी है—

'होइ अतीतु गृहसति तजि फिरि वही के धरि मंगनि जाई ।'[५०]

× × ×

'जैसे सर सरिता सकल मैं समुद्र बड़ो···
ग्यायन में ग्यान अर ध्यायन में ध्यान
गुर सकल धरम में ग्रिहसत प्रधान है ।'[५१]

× × ×

'जैसे मच्छ, कच्छ, बग, हंस, मुकता, परवान
अमृत विख परगास उदध से जानी जै
······जैसे बहु दरसन वरनास्रम धरम
सकल ग्रिहसत की साखा उनमानी जै ।'[५२]

समाज की एकता प्रत्येक युग की माँग रही है। भाई गुरदास के समय तक लगभग सभी वर्णों के लोग सिक्ख धर्म में प्रवेश पा चुके थे। तो भी अभी तक समाज विश्रृंखल अवस्था में था। कुछ कट्टर लोग इस बीमारी से ग्रस्त थे। 'चारों वर्ण जातियों को एक करने की भावना भाई साहिब ने कई पौड़ियों में प्रकट की है।'[५३] समाज की उन्नति के लिए उसकी एकता वांछित है। उस समय समाज की पतनोन्मुख स्थिति का कारण ही आपसी भेदभाव और अनेकता था। उस समय गुरुओं ने सारे समाज को एकदम से सुधारने का प्रयत्न तो न किया। मूल इकाई मानव को सुधारने की सफल चेष्टा अवश्य की। सिक्ख धर्म मानव धर्म हो गया। भाई गुरदास ने भी गुरमुख की अनेक प्रकार से व्याख्या की है, उसमें आदर्श मानव की झलक मिलती है। इसके साथ ही उन्होंने सतगुरु को ही अपना शासक (पातशाह) माना है और साधु-संगति को ही अपना समाज माना है, जिसमें उन्होंने समता भाव से ऊँच-नीच के भेद को मिटाकर सद्‌गुणों की स्थापना करके गुरु सिक्ख सम्बन्धों को एक आदर्श रूप दिया है।

सतिगुरु सच्चा पातिशाह साथ संगति सच
तखत सुईसा—आशा विच निरास गति
सच्चा खेल मेल ऊँच खेला
गुरुमुख सिख गुरु फुर चेला ।[५४]

गुरमुख ने ही गुरु की कृपा से और साध-संगति के फलस्वरूप उस अभेद, अलख निरंजन ईश्वर को पाया। उसकी भाव-भक्ति ने ही उसे इस 'सुख फल' को प्राप्त किया।

'मिहर मुहबत आशकी, इशक मुशक किऊं लुके लुकाया।
गुरमुख सुखफल अलख लखाया।'[५५]

इतना ही नहीं गुरसिक्खों के आदर्श जीवन का महत्त्व बताते हुए भाई गुरदास लिखते हैं कि इन गुरसिक्खों से मिलाप करने से मानव को अलौकिक आनन्द की अनुभूति होती है। 'गुर सिख संगत मिलाप को प्रताप जैसों, तैसों न त्रिलोक बिखै और ठौर अनीखै।'[५६] एक अन्य कवित्त में उन्होंने गुरसिक्ख को तत्कालीन प्रचलित दोषों एवं कुरीतियों से बचकर एक गुरु की शरण में आने पर बल दिया है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है—

'नाम, इश्नान, दान सेंजम न जाप ताप
तीरथ व्रत पूजा नैमनतकार हैं।···

तैसे गुर सिखन में एक टेक ही प्रधान,
आन ग्यान ध्यान सिमरन विमवार है ।'[57] ॥४८२॥

वैदिक काल में नारी को जो स्थान प्राप्त था, वह विदेशियों के भय से तथा समाज की विकृत अवस्था को देखते हुए धीरे-धीरे पतनोन्मुख होता गया ।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥[58] —मनुस्मृति

नारी की पूजा के स्थान पर देवताओं के निवास का नारा लगाने वाली संस्कृति का धीरे-धीरे ह्रास हो गया । सिक्खधर्म के प्रवर्तक गुरु नानक ने पुनः नारी को समाज में उचित सम्मान दिलाया । उन्हीं के सिद्धान्तों का प्रचार करने वाले भाई गुरदास ने भी नारी को सम्मान की दृष्टि से देखा और अपने काव्य में उसे आदर्श रूप में चित्रित किया है । नारी की प्रशंसा करते हुए वे लिखते हैं 'मायके में वह माता-पिता की प्यारी बेटी होती है, भाइयों की प्यारी बहन होती है । इसी प्यार के कारण वह दान-दहेज के साथ शादी के समय विदा की जाती है । सुहागन होकर वह ससुराल में भी सम्मान की पात्र होती है । उसे अर्धांगिनी की संज्ञा दी गई है । वह मोक्ष का द्वार है । प्रतिव्रता स्त्री को प्राप्त करके ही मनुष्य सुख पा सकता है । कहा है—

'पेवकड़े घर लाडली माऊपीऊ दी पियारी ।
विच भरावां भेनडी नानक दादक सन परवारी ।
लख खरच वीवाहीआं गहिसा दाजसाज अति भारी ।
साहुरडे घर मन्नीअे सनखत्ती परवार सुधारी ।
लोके वेद गुण गिआन विच अरध सरीरी मोख दुआरी ।
गुरमुख सुखफल निहचउनारी ।'[59] ६/१६

इतना ही नहीं, वह केवल पति के लिए ही शोभा का कारण नहीं बनती, बल्कि सम्पूर्ण कुटुम्ब उस पर गर्व करता है । सभी लोग उस पर सर्वस्व न्योछावर करने के लिए तैयार होते हैं । इसमें प्रतिव्रता के गुणों का वर्णन किया गया है और स्त्री को प्रतिव्रता धर्म का पालन करने के लिए कहा गया है ।

'मन बच क्रम कै पतिव्रत करे जो नारि,
ताहि मन बच क्रम चाहत भतार है ।
अभरन सिंगार चारु सिहजा संओग भोग
सकल कुटुम्ब ही में ताको जै-जै कार है ।
अनन्द सुखमंगल सुहाग भाग,
सुन्दर मन्दर छवि सोहत सुचार है ।'[60]

भाई गुरदास ने अपने वार-साहित्य में तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक स्थिति का जीता-जागता चित्र प्रस्तुत किया है । गुरु नानक के आगमन से पूर्व की दयनीय सामाजिक स्थिति को स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं—

'जुग गरदी जब होव है उलटे
जुग किआ होइ वरतारा ।

उठे गिलान जगत विच वरते
पाप भ्रिसटि संसारा।'[६१] १/१७

दानव रूप में मुसलमान शासक भारत भूमि पर पदार्पण कर चुके थे। उन्होंने भारतीयों पर अत्याचार के बल पर अपने धर्म को थोपना चाहा। भय और लोभ देकर अनेक हिन्दुओं को मुस्लिम बनाया। उन्होंने हिन्दुओं के मन्दिरों को तोड़ा, लूटा। मस्जिदों का निर्माण किया और गरीब जनता को दमित करने में कोई कसर न छोड़ी। भाई गुरदास के शब्दों में—

'ठाकुरद्वारे ढाहि कै तिह टाऊड़ी मासीत उसारा,
मारन गऊ गरीब को धरती ऊपर पाप बिशारा,
काफर मुलहद इरमेनी रूमी जंगी दुशमन दारा
पापे दा बरतिया वरताए।' १/२०।[६२]

इतना ही नहीं, उनका धर्म भी कोई पाक धर्म नहीं था। उनके नेता भी भ्रष्टाचारी थे।

'काजी होए रिशवती बड्डी लै के हक गहाई।
वरतिआ पाप सगस जग माही।'[६३]

विदेशियों की इस निर्ममता से बचने का एक ही उपाय था—हिन्दू धर्म की सहजता और सामाजिक संगठन। सिक्खधर्म ने हिन्दूधर्म को नई दिशा देकर उसमें सभी जातियों को आमंत्रित किया। उन्होंने वर्ण-व्यवस्था को मिटाकर एक धर्म की स्थापना की। 'वास्तव में भाई गुरदास ने गुर सिक्खी का सबसे बड़ा कर्त्तव्य यही माना है। मनुष्यता में पड़ी हुई भेद-भाव की भावना को समाप्त करके सबको बराबर समझा जाए।'[६४] अपने वार-साहित्य में उन्होंने इस तथ्य को पान की लालिमा के माध्यम से व्यक्त किया है—

'चारि वरन इक वरन करि बरन
अबरन तमोल मुलाले।
अष्टधातु इक धातु करि
वेद कतेब न भेदु विचाले।' ११/७[६५]

मुसलमानों के आगमन से सभी छोटे-छोटे सम्प्रदाय खतरे में पड़ गए। उन्होंने एकता हेतु सिक्खधर्म की ओट ली। गुरुओं के प्रचारक सत्प्रयत्नों से स्थान-स्थान पर सिक्खधर्म के प्रचारक उनका मार्ग दर्शन करने लगे। भाई गुरदास भी उनमें से एक प्रमुख प्रचारक थे। उन्होंने जहाँ गुरुओं के उपदेशों का प्रचार और प्रसार करके गुरमत की व्याख्या प्रस्तुत की, वहाँ अपने दैनिक जीवन के अनुभवों, दृष्टांतों द्वारा जनता को नई दिशा दी। धर्म की कट्टरता और जटिलता का, रूढ़ियों का निराकरण किया। मुसलमानों के आगमन से समाज में विलासिता का बोल-बाला हो गया। नारी को भोग विलास की वस्तु समझा जाने लगा। भाई गुरदास ने जहाँ नारी का महत्त्व बताया, वहाँ साथ ही साथ यह चेतावनी भी दी है कि नारी को मात्र विलासिता की वस्तु मानने से समाज में दुर्वृत्ति पनपती है। जहाँ उन्होंने नारी को गौरव प्रदान कर सम्मान दिलाया, वहाँ पुरुष को उसे विलास का साधन बनाने से रोका। उन्होंने लिखा है—

'सैका नारी जती होई परनारी
थी मैन बखाने।' ६/८[६६]

इतना ही नहीं भाई गुरदास उस पुरुष को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं और उस पर न्यौछावर जाते हैं, जो परनारी से परहेज करता है और एक पत्नीव्रत धर्म का पालन करता है—

'हऊ तिसु घोलि घुमाइआ
परनारी दे नेड़ि न जावै।'[६७]

भाई गुरदास ने पतिव्रता स्त्रियों और एक पत्नीव्रत धर्म का पालन करने वाले आदर्श पुरुषों के एक नवीन समाज की कल्पना की थी। स्त्री और पुरुष ही तो समाज रूपी रथ के दो पहिए हैं। एक भी ठीक नहीं हुआ, तो रथ की चाल टेढ़ी हो जाएगी। अतः भाई गुरदास एक श्रेष्ठ युगचेता थे। उन्होंने समाज-निर्माण हेतु आध्यात्मिकता को आधार बनाया, दर्शन को नया कलेवर दिया। गुरमत का प्रचार करके साध संगत और सतगुर के प्रताप से गुरुमुख होने पर बल दिया, ताकि मानवीय आदर्श गुणों का प्रकाश हो सके। 'गुरमुख बनने में ही जाती नजात है। इसमें ही संसार का कल्याण और समाज की मुक्ति है। गुरमुख तभी हो सकता है, यदि 'हऊमे को मारे' शब्द मन में बसाए और 'इन्सान' शब्द का ही मुजसम बन जाए।

'हऊमै दीसा रोग है, दारा भी इस मांहि।
क्रिया करहि जे आपसी तो गुर का शबद कमाहि॥[६८]

शब्द और हऊमे दोनों विपरीत बातें हैं। शब्द को वेदों में ब्रह्मा रूप कहा गया है। शब्द मनुष्य को सन्मार्ग की ओर ले जाता है, तो हऊमे कुमार्ग की ओर। प्रत्येक युग में इसी अहम् यानि हऊमे को कुचलने, मारने की बात कही गई है। यही हऊमे समाज की बनावट को विकृत करता है। भाई गुरुदास के युग में भी। इसी हऊमे ने दो वर्ग बना दिए। शब्द को धारण करने वाले 'गुरुमुख' और हऊमे को धारण करने वाले 'मन मुख'।' सामाजिक समस्याओं के हल करने की शक्ति केवल शब्द में है। हऊमे इसका खण्डन है, इसमें से अभाव है, सो 'दीर्घ रोग है और हउमे के रहते कोई गुरमुख नहीं बन सकता।'[६९] मनमुख गुरमुख की सर्वत्र विरोधता करता है। गुरमुख कष्ट सहन करते हैं। मनमुख मौज मेला करते हैं, वे हऊमे के अधीन है। माया के बन्धन के अधीन तृष्णा और लोभ उसके रोम-रोम में समाए रहते हैं। अच्छाई के मार्ग से वह कोसों दूर भागता है। सज्जनों का विरोध और निन्दा करना उसका स्वभाव बन जाता है। मगर गुरमुख लोग वास्तविक सत्य को अपना कर स्वयं सत्य रूप होकर ईश्वर को सत्य जानकर प्रत्येक जीव में उसे पा लेते हैं। इसी से सत्य समाज की स्थापना होती है। 'सत्य समाज की चाल का वह मार्ग है, जहाँ कोई दूसरे का खून नहीं पीता, जहाँ मांस खाना असम्भव है। ऐसा सत्य प्रकाश है, ज्ञान है, चंद्रमा है।'[७०] भाई गुरदास कहते हैं कि "गुरु साहिब को सत्य के चन्द्रमा की तलाश है, जो इस माँस खाने वाली सामाजिक चाल को समाप्त करने का हथियार, उसके पाप की दवा है। पृथ्वी लहू-पानी माँस खाती समाज की चाल के पाप से ग्रसित है।" कहा भी है—

'कलि आई कुत्ते मुही
खाजु होइवा, मरदार गुसाई।
राजे पाप कमा 'वेद'
उलटी वाड़ खेत कउ खाँई।'[७२]

ऐसे भयानक समय में कोई महापुरुष ही अपना सर्वस्व त्यागकर जनता का हितकारी हो सकता था। गुरु नानक ने ऐसा ही किया। उन्होंने सोई जनता को अपनी भूली हुई स्थिति से अवगत कराया। और गुरु का महत्त्व, सत्य, नाम-स्मरण और सत्संगति आदि बहुमूल्य सद्गुणों का सन्देश देकर भारतीय अमर संस्कृति और सभ्यता को नवजीवन प्रदान किया। प्रजा को नाम, ज्ञान और सत्य देने का मतलब उसे अपने सामूहिक हित से चैतन्य कराना है।[७३] मगर यह कार्य इतना सहज नहीं है। नेक काम के लिए बाधाएँ तो आती ही हैं। अगर बुराई न हो तो अच्छाई का निर्णय करना कठिन हो जाए। भाई गुरदास ने ऐसे लोगों को मनमुख कहा है और 'मीणा' की संज्ञा से भी अभिहित किया है। उनकी खुलकर डाँट-डपट की है। भाई गुरदास की ३४वीं और ३५वीं वार में तो भाई गुरदास ने मनमुख के लिए निन्दक, कृतघ्न, नमकहरामी, अगाध पूजा का दान खाने वाला आदि शब्दों का प्रयोग करके उसके स्वरूप को स्पष्ट किया है। ३६वीं वार में भाई गुरदास ने उनके लिए 'मीणा' निगुरा (गुरुहीन) मूर्ख, गँवार आदि शब्दों का प्रयोग किया है। उनकी संगति को खोटा दुखदाई कहकर नरकगामी भी कहा है।[७४]

इस प्रकार भाई गुरदास की रचनाओं में भले ही प्रत्यक्ष रूप से नहीं सही, तो भी तत्कालीन युग का चित्रण स्वतः स्पष्ट हो आया है। भाई साहिब ने भले ही यह कार्य जानबूझकर नहीं किया, तो भी यह एक श्रेष्ठ साहित्य की पहचान है कि वह अपने समाज का प्रतिविम्ब होता है। भाई साहिब के वार-साहित्य और कवित्त-सवैये दोनों रचनाओं में उनके समय की सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक स्थितियों का पूरा ब्यौरा मिलता है। एक प्रचारक और सुधारक के नाते उन्होंने समाज की कुरीतियों को दूर करना अपना कर्त्तव्य समझा। गुरुमत का प्रचार करने का उद्देश्य भी तो यही था। दुराचार का प्रभाव बढ़ता जा रहा था। इसीलिए 'विशेष तौर पर भाई साहिब ने सदाचार पर जोर दिया जो उस गिरावट वाले हालात में आवश्यक था।'[७५] और उनके सत्प्रयत्नों व लम्बे पर्यटनों से भारत के कोने-कोने में गुरमत का सन्देश पहुँचा। स्थान-स्थान पर घूमते रहने, प्रचार करने के कारण ही उनके काव्य में तत्कालीन युग-चित्रण इतना सजीव हो उठा है।

सन्दर्भिका

१. आई० बी० बैनर्जी, खालसे दी उत्पत्ति (जिल्द पहली), अनुवादक प्रीतपालसिंह (पटियाला : पंजाबी यूनी० १९७६) पृ० ३३.

२. प्यारासिंह पद्म, संखेप सिख इतिहास (पटियाला : कला मन्दिर, लोअर माल १९७९) पृ० १३७.

३. सुरिन्दरसिंह कोहली, नानक काल, पंजाब यूनी० पंजाबी साहित दा इतिहास, सम्पा० सुरिन्दरसिंह कोहली (चण्डीगढ़ : पंजाब यूनी०, १९७३), पृ० १४७.
४. प्यारासिंह पद्म, संखेप सिख इतिहास (पटियाला : कला मन्दिर, लोअर माल, १९७९) पृ० २४०.
५. खुशवन्तसिंह, ए हिस्ट्री आफ दि सिक्खस् (दिल्ली : आक्सफोर्ड प्रैस, १९७७), पृ० ४३.
६. क. ज. अमराफआन, गुरु नानक अते उनां दा समां, सम्पा० गुरबक्श(मास्को : प्रगति प्रकाशन, १९७२) पृ० १३.
७. दलीपसिंह दीप, भाई गुरदास (पटियाला : भाषा-विभाग पंजाब, १९८१), पृ० २१.
८. वही, पृ० २२.
९. रत्नसिंह जग्गी, भाई गुरदास जीवन ते रचना (पटियाला : पंजाबी यूनीवर्सिटी, १९७४), पृ० ७१.
१०. भाई गुरदास, ४१ वारां भाई गुरदास, सम्पा० नरैणसिंह गिआनी (अमृतसर : जवाहरसिंह कृपालसिंह एण्ड को १९१४). पृ० १२५.
११, रत्नसिंह जग्गी—भाई गुरदास जीवनी ते रचना (पटियाला : पंजाबी यूनी-वर्सिटी, १९७४), पृ० ७२.
१२. के. एस. नारंग, हिस्ट्री आफ दि पंजाब (दिल्ली : यू. सी. कपूर एण्ड सन्ज, १९३९) पृ० २४.
१३. सुरिन्दरसिंह कोहली, नानक काल, पंजाब यूनी० पंजाबी साहित्य दा इतिहास, सम्पा० सुरिन्दरसिंह कोहली (चण्डीगढ़ : पंजाब यूनीवर्सिटी, १९७३), पृ० १४७.
१४. एम. अथर-अली, दि मुगल नोबिलटी अंडर औरंगजेब (बम्बई : एशिया पब्लि-शिंग हाऊस, १९७०), इण्टरोडक्शन. पृ० ३.
१५. खुशवन्तसिंह, ए हिस्ट्री आफ दि सिक्खस् (दिल्ली : आक्सफोर्ड प्रैस, १९७७), पृ० २८.
१६. भाई जोधसिंह, भाई गुरदासजी दे राजसी विचार, पंजाबी दुनिया (भाई गुरदास विशेषांक) सम्पा० लालसिंह, (पटियाला : भाषा-विभाग, पंजाब) १९७८), पृ० १२५.
१७. भाई गुरदास पावारा, भाई गुरदास, सम्पा० नरैणसिंह गिआनी (अमृतसर : जवाहरसिंह किरपालसिंह एण्ड को. १९४१), पृ० १४.
१८. वही, पृ० ३६.
१९. वही, पृ० ३६.
२०. वही, पृ० ३६.
२१. भाई जोधसिंह, भाई गुरदास जी दे राजसी विचार, पंजाबी दुनियां (भाई गुरदास विशेषांक), सम्पा० लालसिंह (पटियाला : भाषा-विभाग पंजाब, १९७८), पृ० १२८.

२२. वही, पृ० १२७.
२३. वही, पृ० १२६.
२४. लालसिंह, भाई गुरदास (पटियाला : भाषा-विभाग, पंजाब, १९६६,); पृ० १२०-१२१.
२५. वही, पृ० १२१.
२६. वही, पृ० १२१.
२७. वही, पृ० १२२.
२८. सुरिन्दरसिंह कोहली, नानक काल, पंजाब यूनी० पंजाबी साहित्य दा इतिहास, सम्पा. सुरिन्दरसिंह कोहली (चण्डीगढ़ : पंजाब यूनी०, १९७३), पृ० १४४.
२९. प्यारासिंह पद्म, संखेप सिक्ख इतिहास (पटियाला : कला-मन्दिर, लोअर माल, १९७९), पृ० ३७.
३०. के. एस. नारंग, हिस्ट्री आफ दि पंजाब (दिल्ली : यू. सी. कपूर एण्ड सन्ज, १९६९), पृ० २६.
३१. प्यारासिंह पद्म, संखेप सिक्ख इतिहास (पटियाला : कला-मन्दिर लोअर माल, १९७९), पृ० ६४-३५.
३२. मोहम्मद अकबर, दी पंजाब अंडर द मुगलज (दिल्ली : इदराहे अदयामिजात, १९७३), पृ० १८९.
३३. रत्नसिंह जग्गी, भाई गुरदास जीवनी ते रचना (पटियाला : पंजाबी यूनिवर्सिटी १९७४), पृ० ७९.
३४. वही, पृ० ८.
३५. वही, पृ० ८९.
३६. तारनसिंह, भाई गुरदास, पंजाब यूनी० साहित्य दा इतिहास, सम्पा० सुरिन्दर-सिंह कोहली (चण्डीगढ़ : पंजाब यूनी० १९७३), पृ० ३४६.
३७. वही, पृ० ३६३.
३८. भाई गुरदास, पावारा भाई गुरदास, सम्पा० नरैणसिंह गिआनी (अमृतसर : जवाहरसिंह किरपालसिंह एण्ड को०, १९१४), पृ० २९.
३९. वही, पृ० ३०.
४०. वही, पृ० ३२.
४१. तारनसिंह, भाई गुरदास, पंजाब यूनी० पंजाबी साहित्य दा इतिहास, सम्पा० सुरिन्दरसिंह कोहली (चण्डीगढ़ : पंजाब यूनिवर्सिटी, १९७३), पृ० ३६३.
४२. भाई गुरदास, पावारा भाई गुरदास, सम्पा० नरैणसिंह गिआनी (अमृतसर : जवाहरसिंह किरपालसिंह एण्ड को०, १९१४), पृ० ७२.
४३. तारनसिंह, भाई गुरदास, पंजाब यूनी० पंजाबी साहित्य दा इतिहास, सम्पा० सुरिन्दरसिंह कोहली (चण्डीगढ़, पंजाब यूनी० १९७३), पृ० ३६३.
४४. भाई गुरदास, पावारा भाई गुरदास, सम्पा० नरैण सिंह गिआनी (अमृतसर : जवाहरसिंह किरपालसिंह एण्ड को० १९१४), पृ० ४५०.

४५. दलीपसिंह दीप, भाई गुरदास (पटियाला : भाषा-विभाग पंजाब, १९८१), पृ० ८०.
४६. तारनसिंह, भाई गुरदास, पंजाब यूनी० पंजाबी साहित्य दा इतिहास सम्पा० सुरिन्दरसिंह कोहली (चण्डीगढ़ : पंजाब यूनिवर्सिटी १९७३), पृ० ३४१.
४७. दलीपसिंह दीप, भाई गुरदास (पटियाला : भाषा-विभाग, पंजाब, १९८१), पृ० ३५.
४८. तारनसिंह, भाई गुरदास, पंजाब यूनी० पंजाबी साहित्य दा इतिहास, सम्पा० सुरिन्दरसिंह कोहली, (चण्डीगढ़ : पंजाब यूनि; १९७३), पृ० ३४१.
४९. दलीपसिंह दीप, भाई गुरदास (पटियाला : भाषा-विभाग, पंजाब, १९८१), पृ० ३६.
५०. भाई गुरदास, वारां भाई गुरदास, सम्पा. नरैणसिंह गिआनी (अमृतसर : जवाहरसिंह, किरपालसिंह, १९१४), पृ० ४६.
५१. भाई गुरदास, कबित्त सवैये सटीक भाई गुरदास जी, सम्पा० गिआनी बिशनसिंह (अमृतसर : जवाहरसिंह किरपालसिंह, १९७६), पृ० १३१.
५२. वही, पृ० १३०.
५३. दलीपसिंह दीप, भाई गुरदास (पटियाला : भाषा-विभाग पंजाब, १९८१), पृ० ३६.
५४. भाई गुरदास, वारां भाई गुरदास, सम्पा० नरैणसिंह गिआनी (अमृतसर : जवाहरसिंह किरपालसिंह, १९१४) पृ० ३५८.
५५. वही, पृ० ३६०.
५६. भाई गुरदास, कबित्त सवैये सटीक भाई गुरदासजी, सम्पा० गिआनी बिशनसिंह (अमृतसर : जवाहरसिंह किरपालसिंह १९७६) पृ० २२८.
५७. वही, पृ० २८८.
५८. मनु, मनुस्मृति (द्वितीय खण्ड), सम्पा० ज. ह. दुबे, (मुम्बई : भारतीय विद्या-भवन, सन् अनुपलब्ध), पृ० ७५.
५९. भाई गुरदास, वारां भाई गुरदास, सम्पा० नरैणसिंह गिआनी (अमृतसर : जवाहरसिंह किरपालसिंह एण्ड को०), पृ० ११८.
६०. भाई गुरदास, कबित्त सवैये सटीक भाई गुरदासजी, सम्पा० गिआनी बिशनसिंह (अमृतसर : जवाहरसिंह किरपालसिंह एण्ड को० १९१४), पृ० २३.
६१. भाई गुरदास, वारां भाई गुरदास, सम्पा० नरैणसिंह गिआनी (अमृतसर : जवाहरसिंह किरपालसिंह एण्ड को०, १९१४), पृ० २३
६२. वही, पृ० २६.
६३. वही, पृ० ३६.
६४. रतनसिंह जग्गी भाई गुरदास, जीवनी ते रचना (पटियाला : पंजाबी यूनी० १९७४), पृ० ६७.

६५. भाई गुरदास, पावारा भाई गुरदास, सम्पा० नरैणसिंह गिआनी (अमृतसर : जवाहरसिंह किरपालसिंह एण्ड को० १९१४.) पृ० २२५.

६६. वही, पृ० १२९.

६७. वही, पृ० २४८.

६८. विशनसिंह, भाई गुरदास ते समाजक बणतर, पंजाबी दुनिया (भाई गुरदास विशेषांक) सम्पा० लालसिंह (पटियाला : भाषा-विभाग पंजाब, १९६८), पृ० १०६.

६९. वही, पृ० १०७.

७०. वही, पृ० १२०.

७१. वही, पृ० १२०.

७२. भाई गुरदास, पावारा भाई गुरदास, सम्पा० नरैणसिंह गिआनी (अमृतसर; जवाहरसिंह किरपालसिंह एण्ड को०, १९१४), पृ० ३६.

७३. विशनसिंह भाई गुरदास ते समाजक बणतर, पंजाबी दुनिया (भाई गुरदास विशेषांक) सम्पा० लालसिंह (पटियाला भाषा-विभाग पंजाब, १९६८), पृ० ११९.

७४. रत्नसिंह जग्गी, भाई गुरदास जीवनी ते रचना (पटियालाः पंजाबी यूनीवर्सिटी, १९७४), पृ० ४८.

७५. तारनसिंह, भाई गुरदास, पंजाब यूनी० पंजाबी साहित दा इतिहास, सम्पा० सुरिन्दरसिंह कोहली (चण्डीगढ़, पंजाब यूनी०, १९७३), पृ० ३६३.

३ | भाई गुरदास के कवित्त-सवैयों का दार्शनिक मूल्यांकन

पूर्व मध्यकाल हिन्दी-साहित्य के इतिहास का 'स्वर्णयुग' कहलाता है। भक्ति काल में अनेकानेक धर्म प्रचलित थे और एक-एक धर्म के अन्तर्गत कई-कई सम्प्रदाय अस्तित्व रखते थे। कारण था वैष्णव धर्म आन्दोलन का उत्तरी भारत के प्रविष्ट होना। रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार —'भक्ति का जो सोता दक्षिण की ओर से धीरे-धीरे उत्तर भारत की ओर पहले से ही आ रहा था, उसे राजनीतिक परिवर्तन के कारण शून्य पड़ते हुए जनता के हृदय-क्षेत्र में फैलने के लिए पूरा स्थान मिला।'[1] यही आन्दोलन विभिन्न सम्प्रदायों के रूप में प्रसारित हुआ। इन सम्प्रदाओं के भिन्न-भिन्न होने पर भी प्राचीन धर्म की कुरीतियों आदि का खण्डन करने में मतैक्य था। इन्हीं के प्रभावाधीन सगुण और निर्गुण धाराओं का प्रस्फुटन हुआ। जिनकी आगे उप शाखाएँ बनीं। थोड़े से ही परिवर्तन से अनेकानेक धार्मिक सम्प्रदाय प्रचलित हुए। गुरु नानकदेव का सिक्ख सम्प्रदाय भी निर्गुण धारा का ही विकसित रूप है। 'भारतीय दार्शनिक, धार्मिक, रहस्यवादी और साहित्यिक परम्पराओं के धरातल पर गुरु नानक की काव्यवाणी से निर्गुण काव्य का प्रारम्भ होता है। अपनी महान प्रतिभा, सहज सृष्टि और गम्भीर अनुभव के कारण गुरु नानक इस काव्य-धारा के प्रवर्तक स्थापित होते हैं।'[2] वास्तव में सिक्खमत निर्गुण धारा का संशोधित एवं परिमार्जित सम्प्रदाय है। इसमें अनेक सामाजिक कुरीतियों का निषेधकर मानव-जीवन के दैनिक जीवन को सदाचार के बल पर श्रेष्ठ बनाने का मार्ग सुझाया गया है। इन्होंने किसी भी मत का अन्धानुकरण न करके आत्मानुभव को ही महत्त्व दिया। इनकी समन्वयात्मक पद्धति की ओर संकेत करते हुए गणपतिचन्द्र गुप्त लिखते हैं, 'इन्होंने किसी विशिष्ट विचारधारा का अनुमोदन अन्धभक्ति से प्रेरित होकर नहीं किया, अपितु अपनी बुद्धि की कसौटी पर कस कर धर्म के सामान्य तत्त्वों को ग्रहण किया।'[3] उन्होंने किसी भी धर्म की कट्टरता को स्वीकार न करके सहज भाव से जीवन व्यतीत करने की दर्शन-पद्धति को अपनाया। यही कारण है कि सिक्ख-लहर और अन्य मध्य-कालीन भक्ति-लहरों के प्रेरणा-स्रोतों और दार्शनिक आधारों में मौलिक अन्तर है।'[4] सिक्खधर्म के प्रवर्तक कहे जाने वाले सिक्ख गुरु परम्परा के प्रथम गुरु नानकदेव ने निर्गुण सन्तों के समान अपनी अनुभूति को ज्ञान के बल पर अभिव्यक्त न करके सगुण भक्ति-वाद में से भक्ति तत्त्व को ग्रहण करके अपनी साधना को भक्तिमूलक बनाया। मगर वे सामाजिक रूढियों का खण्डन और अपने सिद्धान्तों का मण्डन सन्तों के समान ही करते थे। सभी सन्त एवं भक्त अपने संदेशों व उपदेशों को कविता रूप देकर अपने-अपने मत का प्रचार करते थे। प्रत्येक मत के पीछे उसकी अपनी दार्शनिकता थी। इसीलिए तत्कालीन

लीन सन्तों कवियों और गुरुओं की रचनाओं को पढ़कर और उनकी कविता की गहनता और गम्भीरता को देखकर उनके दार्शनिक होने का भी आभास होता है। उनकी यह दार्शनिकता भारत की सभ्यता और संस्कृति पर आधारित होते हुए भी तत्कालीन राजनैतिक और सामाजिक आन्दोलनों से प्रभावित है। इसी प्रकार निर्गुण धारा के सन्त कवि और गुरु भी अपने पीछे एक दार्शनिक आधार लेकर चलते हैं। सन्तकाव्य ब्राह्मणवाद के आडम्बरों का विरोध करके नई स्थापनाओं में विश्वास रखता है। सहज मार्ग द्वारा ईश्वर-स्मरण, गृहस्थ धर्म का पालन और मानव-प्रेम इसकी निजी विशेषताएँ हैं। सिक्खधर्म भी इसी का परिवर्तित रूप है। सिक्ख मत के 'आदि ग्रन्थ' में इन सभी विशेषताओं का आभास होता है। अन्ततः निर्गुण कवियों ने जो कुछ कहा है वही सिक्ख मत के लिए सैद्धान्तिक रूप से सहायक सिद्ध हुआ। सिक्ख मत सन्त-साहित्य से प्रभावित होकर भी अपना अस्तित्व रखता है। 'निर्गुणवादी सिक्ख काव्य में वही कवि शामिल माने जाते हैं, जिनका दार्शनिक और धार्मिक दृष्टिकोण गुरुनानक की विचारधारा का अनुसरण करने वाला है और जिनकी काव्य-कला गुरुकाव्य की शैली से बल प्राप्त करती है।'[५] उनका नानक पंथ आजकल सिक्खमत के नाम से प्रचलित है, जो एक विशाल सम्प्रदाय के रूप में विकास एवं प्रगति के पथ पर आगे बढ़ रहा है। 'गुरु नानक ने तपस्या, देशाटन, चिंतवन आदि करके नानक पंथ विशेषकर अपने मस्तिष्क से निकाला।'[६] कबीर के समान ही जहाँ-जहाँ भी उन्हें सामाजिक और राजसी जीवन में कुरीतियाँ और अभाव दिखाई दिए वहाँ-वहाँ उन्होंने जोरदार आवाज उठाई और उन्हें दूर करने का प्रयत्न किया।'[७] नानक घुमक्कड़ प्रवृत्ति के सन्त थे और अपने आत्मानुभव के बल पर जनता का मार्ग-दर्शन करते थे। इनके जीवन का अपना दर्शन था। इनके धर्म की मौलिकता और साधारण जीवन-दर्शन के बल पर ही आज यह मत आदर्श सम्प्रदाय के रूप में विद्यमान है।' सुधारवादी निर्गुण सम्प्रदायों में अपनी संगठनात्मक शक्ति के कारण नानक-मत सर्वप्रमुख सिद्ध हुआ है।'[८] दस गुरुओं की परम्परा अपने आपमें एक उदाहरण है। इन सभी गुरुओं ने लगभग नानक के गुरमत सिद्धान्तों का ही प्रचार एवं प्रसार किया। दस गुरुओं के अतिरिक्त अनेक गुरु सिक्खों ने भी गुरमत के सिद्धान्तों की ही दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत कर सिक्खधर्म के आदर्शों को जनता तक पहुँचाया। गुरु नानक वाणी 'आदि ग्रन्थ' में उपलब्ध है। उन्होंने अपने विचारों को कविता के माध्यम से अभिव्यक्त किया। उन्हें जो अच्छाई जहाँ से मिली, ग्रहण की और ऐकेश्वरवाद, कर्मकाण्ड की निन्दा, आडम्बरों का विरोध, छुआछूत का विरोध तथा समता का भाव रखने का संदेश दिया। उन्होंने 'किरत करो, वंड छको और नाम जपो' का देशव्यापी नारा दिया।' निर्गुण सन्तों में यदि किसी की वाणी और उसके द्वारा प्रवर्तित मत यदि आज भी अपने दृढ़ और संगठित रूप में मौजूद है, तो वह नानक का ही मत है।'[९] 'पंचम गुरु अर्जुनदेव ने निर्गुण मतावलम्बी सन्तों, भक्तों, गुरुओं की सार्थक एवं उपयोगी वाणियों का संकलन करके भाई गुरदास से आदिग्रन्थ का लेखन एवं सम्पादन कराया। अतः कह सकते हैं कि 'आदि ग्रन्थ' निर्गुण धाराश्रित सिक्ख मत का दर्शन-ग्रन्थ है। बचपन से ही गुरुघर में रहने के कारण आप गुरमत के सिद्धान्तों

से परिचित थे। आप एक प्रचारक होने के नाते अच्छे व्याख्याता भी थे। गुरु नानक के सिद्धान्तों को जिस गहरी समझ, क्रियात्मक प्रयोग और विशाल विद्वत्ता से भाई साहिब ने ग्रहण किया था, शेष गुरुओं के अतिरिक्त न्यूनाधिक ही किसी अन्य सिक्ख ने किया है।'[१०] उन्होंने नानक के विचारों को गहराई से जानने का सफल प्रयास किया और तत्कालीन परिस्थितियों के अनुकूल व्याख्या प्रस्तुत की। आपने अपनी रचनाओं में दैनिक जीवन के आचार-व्यवहार के उदाहरण लेकर जनता को सही मार्ग दिखाया है। सरलतम ढंग से ईशोपासना की प्रेरणा दी है। हमारा विषय केवल भाई गुरदास के 'कवित्त-सवैये' तक ही सीमित है। अतः यहाँ उनकी ही चर्चा की जाएगी। भाई गुरदास ने अपनी उक्त रचना में गुरमत-सिद्धान्तों का दार्शनिक मूल्यांकन प्रस्तुत किया है। उन्होंने दर्शन को दैनिक जीवन की अनिवार्यता मानकर उसका साधारणीकरण किया है। यही कारण है कि भाई गुरदास के 'कवित्त-सवैये' मानव-जीवन के नैतिक दर्शन को दर्शाते हैं। चतुर्थ अध्याय में 'कवित्त-सवैयों' का सामाजिक नैतिक अध्ययन किया गया है। भाई गुरदास की निर्गुण वाणी गुरु नानक की निर्गुण विचारधारा को अपने शब्दों में खोलकर बताती है। इसका भाव यह है कि गुरदास वाणी का प्रेरणा-स्रोत आदिग्रन्थ' है। अतः स्पष्ट है कि भाई गुरदास ने भी नानक के मानव-जीवन के सदाचारी पक्ष को ही अधिक महत्त्व दिया है। भाई गुरदास ने भी 'धर्म' को मानव-जीवन के आचार-व्यवहार, नीति, समाज और दर्शन से सम्बद्ध माना है। आपके 'कवित्त-सवैये' गुरमत की स्पष्ट और सरल व्याख्या करते हैं। 'गुरु-काव्य के सिद्धान्तों, धर्म-भावना और जीवन के आचार-विचार को आधार मानकर भी भाई गुरदास ने अपनी रचना में सामाजिक और धार्मिक मूल्यों पर विशेष बल देकर नवीन शब्द-प्रयोग और शैली में नवीन विकास किया है।'[११]

भाई गुरदास के 'कवित्त-सवैयों' के दार्शनिक मूल्यांकन के दो आधार हैं। एक तो उनका अध्ययन सिक्ख मत के गुरमत दर्शन के अन्तर्गत किया जा सकता है, जिसमें गुरसिक्ख की रहत-मर्यादा और आचरण पर प्रकाश डाला गया है। दूसरे कवित्त-सवैयों में सामान्य जीवन के प्रति सामूहिक रूप में जो नैतिक सिद्धान्त कहे गए हैं, उनका अध्ययन किया जाए। प्रस्तुत अध्याय में दोनों आधार लिए गए हैं।

१. गुरमत-दर्शन

भाई गुरदास ने अपनी रचना 'कवित्त-सवैये' में गुरमत-दर्शन के सिद्धान्तों का अत्यन्त सरस, सरल एवं स्पष्ट रूप से प्रतिपादन किया है। आपने भारतीय दर्शन की रूढ़िवादिता को नवीन रूप देकर सिक्ख मत के सिद्धान्तों की पुष्टि की है। दर्शन की नीरसता को जीवन की सरसता से जोड़कर समाज को नई दिशा प्रदान की है। आपने मानव-जीवन की सफलता तभी मानी है, जब उसे गुरु-चरणों की प्रीति मिले। गुरु को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान किया है। आपने सिक्ख मत के अनुसार सतगुरु को ही ईश्वर (वाहिगुरु) की संज्ञा प्रदान की है। इसी के आधार पर उन्होंने नानकदेव को ईश्वर का रूप माना है और निर्गुण ईश्वर के सभी गुणों से उन्हें विभूषित किया है। भाई

'सतिगुर चरन सरन चल जाह सिख,
चरन सरन ताकि जगता की चल आवई।
..

सतगुर सीखया दीख्या हिरदै प्रवेस जाहि,
तांकी सिख सुनत परमभद पावई।।[१६]

जो सिख गुरु की शरण में आता है और उसका उपदेश सुनकर आज्ञा का पालन करता है, उसका हुकम मानता है तथा अनुकरण करता है। वह वैसा ही हो जाता है। फिर वह भी संसार के लिए पूजनीय हो जाता है और परमपद (मोक्ष) को पा लेता है।

भाई गुरदास ने गुरु को सच्चा मार्ग-दर्शक और 'वाहिगुरु' का ही रूप माना है। उन्होंने गुरु के बिना ईश्वर-प्राप्ति को असम्भव माना है। गुरु ही शिष्य (सिख) को गुरमुख होने की प्रेरणा देता है और उसे मर्यादा का पालन करने की प्रेरणा देता है, ताकि वह गुरु की कृपा-दृष्टि का पात्र बन सके। गुरु की प्रसन्नता का अभिप्राय है ईश्वर-प्राप्ति व मोक्ष-साधन का सुलभ होना।

३. गुरसिक्ख (जीव)

भाई गुरदास ने श्रेष्ठ जीव उसी को माना है जो गुरमुख है और गुरु का शिष्य (सिक्ख) है। जो अपने गुरु के उपदेश को हृदय में धारण करता है और जो पूर्ण ब्रह्म सतगुरु स्वरूप ईश्वर का ध्यान करता है, उसी का जीवन सफल है।

'गुरु उपदेश हिरदै निश्रित निवास बास,
ध्यान गुर मूरति के पूरन ब्रह्म है।'[१७]

गुरु की कृपा से गुरमुख मन, वचन और कर्म से एक रूप होकर जब गुरु की शरण में जाता है, तो उसका जीवन सफल हो जाता है। उनके नेत्र, कान आदि गुरु की प्रेमा भक्ति पाकर आनन्दमयी हो जाते हैं। उन्हें अलौकिक आनन्द की अनुभूति होती है।

'गुरमुख मन वच करम इकत्र भए,
पूरन परम पद प्रेम प्रगटाए है।
लोचन में द्रिस्टि दरस रस गंधि संधि,
स्रवन सबद सुरति गंध रस पाए है।'[१८]

अतः गुरमुख (जीव) को मुक्ति हेतु मन, वचन और कर्म से एक रूप होकर उस सतगुरु के चरणों में लीन होना चाहिए। तभी उसके जीवन की सार्थकता है। तभी वह जीव गुरसिक्ख या गुरमुख कहला सकता है।

४. जगत्

संसार और ईश्वर की अद्वैतता और ईश्वर की सर्वव्यापकता निर्गुण कवियों की वाणी में यत्र-तत्र विद्यमान है। सिक्ख-सिद्धान्तों के अनुसार ईश्वर को निराकार

मानकर उसे जगत के कण-कण में विद्यमान माना गया है। अतः संसार ईश्वर का ही परिवर्तित रूप है।

'पूरन ब्रह्म आप आपन हो आप साज,
आपन रचियो है नाऊ आप ओंकार कै।
आदि गुरु दुतीअ गोबिन्द नाम के कहाइओ
गुरमुखि रचना अकार ओंकार के।'[१९]

जीव और ब्रह्म की अद्वैतता का वर्णन करते हुए भाई गुरदासजी अनेक दृष्टांत प्रस्तुत करते हैं।

'सबद सुरत लिव गुर सिक्ख संध मिले,
जन्त्राधुनि जन्त्री उनमन उनमान है।
एक ओ अनेक भेक ब्रह्म बिवेक टेक,
स्रोत सरिता समुन्द्र आतम समान है।'[२०]

उस वाहिगुरु का इस संसार में ऐसे निवास है जैसे बंसी में स्वर विद्यमान रहता है। गुरमुख ईश्वर को ऐसा ही मानते हैं। वाहिगुरु के उस रूप में गुरुमुख ऐसे तद्रूप हो जाते हैं, जैसे समुद्र के जल में नदी का जल मिल जाने पर तद्रूप हो जाता है। सब प्राणियों में विद्यमान होने पर भी ईश्वर की भिन्न सत्ता है। मगर गुरमुख उसे सर्वत्र विद्यमान जानकर ही उसका ध्यान करते हैं। वह ब्रह्म कपड़े के ताने-बाने के समान अलग भी है और एकाकार भी।

'दरपन दरस ओ जन्त धुनि अंत्री विध,
ओत पोत सूत एकै दुबिधा मिटाई है।'[२१]

वह ईश्वर दर्पण में बिम्ब के समान ही भिन्न भी है और समान भी। वंसी की ध्वनि के समान समाया भी हुआ है, और बाहर भी है। मगर प्रत्येक जीव उस ईश्वर को नहीं पा सकता। केवल गुरमुख ही उसे पा सकते हैं।

'घट-घट का पर बेस सेस
पहि कहत न आवै,
नेति-नेति कहि नेति बेद
बन्दीजन गावै।'[२२]

शेष, वेद और भाट आदि भी उसका पार नहीं पा सकते हैं। वही ईश्वर 'संसार' रूप है और 'वाहिगुरु' रूप भी।

'आया आप प्रगास हुइ,
पूरन ब्रह्म बिवेक।
गुरु गोबिन्द बेदवाणी वे,
नाम दीह प्रभु एक।'[२३]

वह ईश्वर पूर्ण ब्रह्म होकर भी संसार में सर्वत्र प्रकाश्य है। वह ईश्वर जिसे गुरु अथवा परमात्मा कहा जाता है, वास्तव में एक ही है। उसके ही संसार और ईश्वर दो नाम रखे गए हैं।

५. माया

गुरमत सिद्धान्तों के अनुकूल ही माया को भाई गुरदास ने ईश्वर-प्राप्ति में बाधक माना है। गुरमुख ही इसे समझ सकते हैं। माया के कारण ही जीव संसार में भटकता है और ईश्वर की ओर से विमुख रहता है। यह मायाजाल स्वप्न के समान क्षणभंगुर है और बादल के समान शीघ्र ही नष्ट हो जाने वाला है। जैसे तारों का समूह दिन में विलीन हो जाता है, वैसे ही गुरमुख मायाजाल को जानते हैं।

'सुपन चरित्र चित्र जागत ने देखीअत,
तारका मंडल, परभात दिखाइअे।
....
तैसे माया मोह धोह कुटुम्ब सनेह देह,
गुरमुख शबद सुरति लिव लाइये।'[२४]

गुरमुख इस माया-जाल में संसार की नश्वरता में लिप्त नहीं होते। वे इसे मृग तृष्णा के समान जानकर गुरु के उपदेश में ही अपना ध्यान लगाते हैं।

मनमुख इस माया-जाल में उलझ कर अपना जीवन नष्ट करते हैं और अन्त समय पश्चात्ताप करते हैं। गुरु-ज्ञान के बिना माया का आवरण दूर नहीं होता।

"जैसे तो चपल जल अन्तर न देखीअति
पूरन प्रगास प्रतिबिम्ब रवि ससि को।
जैसे तो मलीन दरपन में न देखी अलि,
निरमल बदल न सरूप उरबसि को।
....
तैसे माया परम के अधम अछादयो
मनु, सतगुर ध्यान सुख दान प्रेम रस को।'[२५]

जैसे हिलते पानी में चाँद का विम्ब और मैले दर्पण में सुन्दर स्त्री का मुख साफ दिखाई नहीं देता, तैसे ही माया के बीच भ्रम के पीछे मन ढका हुआ है। जिसके कारण सतगुरु का ध्यान और प्रेम-रस इसके लिए सुखदायक नहीं होता।

६. मुक्ति

मुक्ति या मोक्ष जिसे गुरुमत में परमपद का नाम भी दिया गया है, उस अवस्था का नाम है, जब जीव या गुरसिक्ख गुरु की कृपा से 'वाहिगुरु' के साथ 'सोऽहं ब्रह्म' अथवा तद्‌रूप अद्वैत भावी हो जाता है। भाई गुरुदास के मतानुसार सत्‌गुरु की कृपा और माया से उदासीनता ही मोक्ष दिला सकती है। गुरु ही जीव या 'गुरुसिक्ख' को माया से निर्लेप रख सकता है।

बिन गुर मुक्ति न होई
सब कोऊ कहै,
माया में उदास राखै
सोई गुरु चाहीजै।[२६]

मोक्ष किसी भौतिक वस्तु का नाम नहीं है, यह एक स्थिति या अवस्था का नाम है।

'उलट पवन मन मीन की चपल गति,
सतगुर परचै परम पद पाए हैं।
....
आदे आदि नादे नाद सलिले सलिल मिल
ब्रह्मै ब्रह्म मिल सहज समाए है।'[२७]

गुरु के उपदेश से मीन के समान चंचल मन को संसार से विरक्त करके वायु रोक कर (प्राणायाम कर) आदे (आकाश) नादे (शब्द) और सलिले (जल) आदि तत्त्वों से मिलकर जीव ब्रह्म रूप हो गया। अतः उसने सतगुरु के प्रेम-रस को धारण कर परमपद को पा लिया। मुक्ति ही मानव-जीवन का परम लक्ष्य है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में मोक्ष सबसे अन्तिम और महत्त्वपूर्ण स्थिति है। गुरदास इसे पाने का सरलतम साधन बताते हुए लिखते हैं—

'साधसंग प्रेम नेम जीवन मुकति गति,
काम निहकाम निहकरम करम है।'[२८]

जो गुरमुख साध-संगति में नित्य प्रति जाकर प्रेम पूर्वक नाम जपते हैं और निष्काम कर्म करते हैं, उन्हीं (महात्मा) सिक्खों को जीवन-मुक्ति की अवस्था (परम-पद) प्राप्त होती है। वे स्थितप्रज्ञ हो जाते हैं।

'दुख सुख समरस व्यापै न हरख सोग,
जीवन मुकति गति सतगुर ग्यानीजै।'[२९]

गुरु के ज्ञान के कारण उन्हें हर्ष और शोक, सुख और दुःख की अनुभूति नहीं होती। इस प्रकार वे गुरु की कृपा, साध-संगति व ईश्वर-प्रेम के द्वारा मुक्ति को प्राप्त होते हैं।

७. साध-संगत

भाई गुरदास ने गुरसिक्खों की मर्यादा को बनाए रखने हेतु साध-संगत अर्थात् सज्जनों की संगति को अत्यधिक महत्त्व दिया है। साध-संगत उस पारस के समान है, जो लौह को भी सोना बना देता है।

'जैसे तो गौबंस त्रिन खाइ दुहै गोरस दै,
गोरस ओटाइ दधि माखन प्रगास है।
साध संग मिलत संसारी निरंकारी होत,
गुरमत पर उपकार के निवास है।'[३०]

जिस प्रकार गौएँ घास खाती हैं, मगर दुहने पर दूध (अमृत) देती हैं। उसे गर्म कर बिलो कर माखन निकलता है। इसी प्रकार साधुओं की संगति भी तुच्छ वस्तु को श्रेष्ठ में परिवर्तित कर देती है। साधुओं की संगति में पापी भी गुरमति को धारण कर भक्त हो जाते हैं और फिर उनका ध्यान परोकार की ओर हो जाता है। साध-संगत में

भी प्रत्येक व्यक्ति को गुरु की कृपा-दृष्टि नहीं प्राप्त होती, केवल गुरमुख और शुद्ध मन वाले को ही इसका फल मिलता है।

'कपट स्नेह के मिलत साध संगत में,
चन्दन सुगन्ध बाँस गठीलो न जोएई।'[३१]

जो बुरा आदमी अपने दुष्ट प्रेम के कारण साधसंगति में आता है, उसके अन्दर भक्ति श्रद्धा की सुगन्धि प्रवेश नहीं कर सकती, गाँठ वाले बाँस के अन्दर चन्दन के वृक्ष की सुगन्धि नहीं होती है। इसलिए साध-संगति में अपने अहं का नाश करके अत्यन्त नम्रता के साथ जो घर और बाहर एक समान रहते हैं, वे ही गुरु-कृपा और साध-संगति पाकर मुक्ति के अधिकारी बनते हैं।

'गुरमुख आपा खोई जीवन मुकति गति
विसम विदेह गेह समति सुभाउ है।'[३२]

अतः आपा खोकर ही ईश्वर को पाने का प्रयत्न सफल हो सकता है।

८. नाम-स्मरण

साध-संगत और सतगुर की शरण में जाने का महत्त्व तभी है, जब जीव गुर-सिक्ख उस वाहिगुरु का शब्द-की रतन और नाम-स्मरण करता है, क्योंकि नाम-स्मरण ही मनुष्य को बुरे कर्म से बचाता है। जो गुरमुख हैं वे इसी नाम का आश्रय ग्रहण कर अपने सतगुरु को रिझाते हैं उसकी कृपा के पात्र होकर सांसारिक कार्यों की ओर उन्मुख होते हैं।

'लोगन में लोगा चार गुरमुख एकंकार,
सबद सुरत उनमन उनमानीअै।'[३३]

गुरमुख लोगों में तो दूसरे सामान्य लोगों के समान ही काम करते हैं, मगर अन्दर से गुरु के शब्द अर्थात् उपदेश से श्रेष्ठ प्रीति करके उनमन (तुरीआ पद) अवस्था में एक ओंकार शुद्ध 'वाहिगुरू' का विचार करते हैं।

'सबद की सुरति असुफुरति ह्वै तुरत ही
जुरत है साध संग मुख नाही।
प्रेम परतीत की रीत हित चीत कर,
जीत मन जगत मन दुरत नाही।'[३४]

गुरु के सिख गुरु के शब्द उपदेश की अच्छी प्रीति को तुरन्त (अस्फुरत) याद कर लेते हैं और नाम जपने हेतु साध-संगति में लगे रहते हैं और फिर हटते नहीं हैं। वाहिगुरू के प्रेम में प्रतीति को और नाम को माना। इस रीति के कारण चित्त जगत् की ओर इस काम से मन छुपता नहीं है और गुरु की कृपा से 'नाम' जब एक बार ग्रहण कर लिया जाए, तो पुनः मन अभ्यस्त हो जाता है और रोकने पर भी नहीं रुकता है।

वास्तव में भाई गुरदास गुरबाणी के व्याख्याता थे। उन्होंने गुरमत-सिद्धान्तों के आधार पर ही सिक्ख दर्शन की सरलतम व्याख्या प्रस्तुत की। दृष्टांत भी दैनिक जीवन से सम्बन्धित ही हैं। उन्होंने वाहिगुरु (प्रभु), (जीव) गुरुसिक्ख, माया, जगत्,

मुक्ति, नाम-स्मरण, और साध-संगत की सरलतम व्याख्या करके एक अच्छे दर्शनवेत्ता होने का पुष्ट प्रमाण दिया है।

व्यावहारिक दर्शन : सामाजिक सम्बन्ध में

भाई गुरुदास के कवित्त-सवैये एक ओर तो सिक्ख-दर्शन तथा गुरुमत के सिद्धांतों की व्याख्या करते हैं और दूसरी ओर मानव-जीवन के सदाचारी एवं आदर्श गुणों की ओर प्रेरित करते हैं। उनका यह प्रयास व्यष्टि से समष्टि की ओर अग्रसर होता है। उनकी दृष्टि अत्यन्त पैनी थी। उन्होंने समाज की ईकाई को ही आदर्श रूप देना श्रेयस्कर समझा। उनका यह प्रयत्न एक आदर्श मानव-समाज की स्थापना करने के हेतु प्रसंशनीय कदम था।

तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों की यह माँग थी कि एक मर्यादित सुसंगठित समाज की स्थापना की जाए। सौभाग्य से गुरुनानक देव तथा अन्य सन्तों तथा भक्तों के सत्प्रयत्नों से इसकी आधारशिला पहले ही से रखी जा चुकी थी। सिक्ख मत हिन्दू धर्म की रक्षा एवं प्रौढ़ता हेतु कलेवर बदल कर सरल एवं मधुर रूप में आया। आडम्बर रहित सहज गुणों से युक्त मर्यादित गुरमत का प्रचार हो चुका था। अनेक सिक्ख प्रचारक स्थान-स्थान पर जाकर गुरमत के सिद्धांतों-उपदेशों का प्रचार करते थे। भाई गुरुदास इन्हीं में से प्रमुख प्रचारक थे। मगर गुरु घर के अतिरिक्त अतिनिकट होने के कारण आपने तत्कालीन स्थिति को स्वयं भोगा था। मुस्लिम शासन स्थापित हो चुका था, सामन्तीय व्यवस्था ने लोगों में विलासिता का बीज वो दिया था। महलों की 'चार दीवारी' में दासता पनपकर पूर्ण रूपेण विकसित हो चुकी थी। मुस्लिम संस्कृति ने निम्न जाति के हेय और तुच्छ समझे जाने निकृष्ट एवं हीन भावना वाले लोगों को अपने विशाल दामन व उदार दृष्टिकोण की ओर आकृष्ट किया। भारतीय संस्कृति का कट्टरपन और धार्मिक संकीर्णता उनके लिए अपने किवाड़ सदा के लिए बन्द कर चुकी थी। निर्गुण सन्तों ने निराकार ईश्वर की स्थापना कर नए सामाजिक, धार्मिक समन्वयवादी सिद्धान्तों की सहायता से दोनों संस्कृतियों को निकट लाने का सफल प्रयास किया, जिससे एक नवीन समाज और श्रेष्ठ सभ्यता का जन्म हुआ, जो 'सिखमत' के उदार-हृदय गुरुओं के आशीष से विकसित हुई। दस गुरुओं की परम्परा द्वारा इसे अग्रसर किया गया और 'गुरवाणी' द्वारा इसे निश्चित स्वरूप और दिशा प्रदान की गई। जिसके परिणामस्वरूप यह धर्म आज भी शाश्वत रूप में विद्यमान है। भाई गुरुदास ने गुरवाणी की व्याख्या प्रस्तुत कर गुरवाणी के माध्यम से ही समाज और मानव के जीवन की नियमितताओं की ओर यथेष्ट ध्यान दिया है। उन्होंने मानव को गुरमुख और गुरसिक्ख होकर गुरु के चरणों से प्रीति कर आदर्श गुणों, नम्रता, सदाचार, सच्चाई, ईमान, भक्ति आदि के मार्ग पर चलने और व्यवहार करने पर बल दिया है। उनके 'कवित्त सवैय' सदाचार एवं दैनिक व्यवहार की मुँहबोलती तस्वीर है।

गुरवाणी के अनुसार 'किरत करना, परिश्रम करके बाँटकर खाना' सिक्ख की

मर्यादा है। भाई गुरदास ने भी इसी 'किरत कमाई' की ओर संकेत किया है।

'तैसे माया किरत बिरत है बिकार जग,
पर उपकार गुर सिक्खन सुअंग है।'[35]

'दसों नाखूनों की, हाथ की कमाई' करना गुरु के सिक्खों को सभी अंगों में सुख-दायक है। दूसरे सभी कर्म हेय हैं।

दूसरे का हक मारना, दूसरे का धन चुराना, पराई स्त्री को बुरी नजर से देखना व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों दृष्टियों से बुरा है। साथ ही उससे परलोक और अलौकिक आनन्द भी नष्ट हो जाता है।

'जैसे कोट भार तूल रंचक चिनग परे,
होत भसमात छिन में अकरखान की,
तैसे पर तन धन दूखना बिकार कीए,
हरै निधि सुकित सहज हर खान की।'[36]

जिस प्रकार एक तनिक सी चिंगारी कई मन रुई को एक साथ जला कर राख कर देती है, ठीक इसी प्रकार तनिक सा विकार सम्पूर्ण सुकर्मों को नष्ट कर देता है।

अपने आध्यात्मिक एवं धार्मिक तथ्यों की पुष्टि हेतु भाई गुरदास ने दैनिक एवं तत्कालीन सामाजिक स्थितियों की छाप अपने कबित्तों में दी है। मुस्लिम राजा अपनी अनेक रानियाँ रखते थे। जिस पर प्रसन्न होते उसी के साथ रमण करते। उनके सन्तान होती। लेकिन बाँझ को कोई नहीं पूछता। देखिए दृष्टान्त—

जैसे राजा रावत अनेक रानी सहेत,
सकल सपूती एक बाँझ न सन्तान है।

....

तैसे गुर चरण शरण है सकल जगु
चन्दन बनासपती बास उनमान है।'[37]

इसी प्रकार चन्दन के वृक्ष के पास सारी बनस्पति सुगन्धित होती हैं, बाँस नहीं। यही मनमुख की दशा है।

भाई गुरदास का व्यावहारिक पक्ष अत्यन्त सपाट और स्पष्ट है। उन्होंने किसी भी सम्बन्ध को स्वार्थ पर आधृत माना है। उन्होंने मात्र गुरु और सिक्ख के सम्बन्धों को ही पवित्र माना है।

'नहीं ददसार पिता पितामा, परपितामा,
सज्जन कुटुम्ब सुत बांधव न माता है।

....

असन बसन धन धाम काहूँ में न देख्यो,
जैसो गुरसिख साध संगत को नाता है।'[38]

इतना ही नहीं उन्होंने माता-पिता और पुत्र के नाते को भी इतना महत्त्व नहीं दिया है। उन्होंने एक नित्य सत्य को अपनी रचना में व्यक्त कर दिया है।

'जैसे माता पिता प्रतिपालत अनेक सुत,
अधिक सुतन पै न तैसे होई आवई ।'[१३९]

यह सत्य है कि माता-पिता के अनेक बेटे होते हुए भी कई बार बेटे उनकी देख भाल नहीं करते हैं।

भाई गुरदास का गृहस्थ सम्बन्धी ज्ञान भी पूर्ण था। विवाह हमारे समाज का एक महत्त्वपूर्ण संस्कार है। उस पर भी लड़की का विवाह के बाद ससुराल में जाने पर क्या होता है। भाई गुरदास लिखते हैं—

'नैहर कुआर कन्या लड़की कै मानीयति,
व्याहे ससुरार जाई गुनन कै मानीअै ।'[१४०]

यह सही है कि गुणों के कारण ही ससुराल में लड़की की इज्जत होती है।

भाई गुरदास ने आदर्श समाज की स्थापना हेतु जहाँ गुर-मर्यादा पर बल दिया है, वहाँ गृहस्थ हेतु लिखा है कि कोई भी व्यक्ति गृहस्थी से मुँह न मोड़े। गृहस्थ धर्म सभी धर्मों से श्रेष्ठ है।

'जैसे सर सरिता सकल में समुद्र बड़े,
मेरे में समुन्द्र बड़ी जगत बरखान है।
....
ग्यानन में ग्यान अर ध्यानन में ध्यान गुर,
सकल धरम में ग्रिहसत प्रधान है।'[१४१]

भाई गुरदास ने गृहस्थ धर्म में रहकर पूर्ण गुरसिक्ख होकर ईश्वर का नाम-स्मरण करने और साधु-संगति में रह कर गुरु का अनुसरण करने पर बल दिया है। अतः गृहस्थ में रह कर भी ईश्वर का स्मरण किया जा सकता है।

'गुर उपदेश गुर सिक्ख ग्रह में बैरागी,
गृह तज बन खण्ड होत न उधार जी।'[१४२]

गुरु के सिक्ख घर में ही त्यागी और वाहिगुरु के सच्चे सेवक बनकर रहते हैं। भाव यह कि गुरु के उपदेश का पालन करते हैं। जो इसके विपरीत घर-बार त्याग कर बनों में भटकते हैं, उनकी मुक्ति नहीं होती। घर में रहकर भी मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। अगर गुरु कृपा न हो तो बन में भटकने पर भी उद्धार नहीं होता। अतः गृहस्थ धर्म गुर सिक्ख की मर्यादा है। इसका पालन करना उसका परम कर्त्तव्य है।

गृहस्थ धर्म के लिए पति-पत्नी के सम्बन्धों का अच्छा होना तथा पारस्परिक प्रेम एवं सहयोग की भावना का होना अनिवार्य है। इसके लिए नारी-सौन्दर्य उसका प्रमुख गुण है।

'जोई प्रिआ भावे ताहि सुन्दरता के सुहावै,
सोई सुन्दरी कहावै छवि के छबीली है।
....
जोई प्रिआ भावै ताँहि प्रेम रस ले पी आवे,
सोई प्रेमनी कहावै रसिक रसीली है।'[१४३]

पत्नी पति के प्रति दास्य भाव से उसके चरणों की प्रीति चाहती है। वह अपने प्रियतम को रिझाने के लिए अपने को दीन-हीन कहती है। वह अपने को पति के चरणों के योग्य ही नहीं मानती है। वह अपने पति-परमेश्वर के प्रति दास्य भाव अभिव्यक्त करती है।

'रूपहीन, कुलहीन, गुनहीन, ग्यानहीन,
शोभाहीन, भागहीन तपहीन आवरी।
....
अंग-अंग हीन दीनाधीन पराचीन लग,
चरन शरनि कैसे प्राप्ति ह्वै रावरी।'[१४४]

पतिव्रता स्त्री सदैव स्वयं को नम्रता भाव से पति के चरणों में अर्पित करती है। गृहस्थ में और बाहर समाज में मानव का व्यवहार ही उसका प्रभाव बनाता है। गुर-सिक्ख होने के नाते भाई गुरदास ने सदाचार का प्रथम गुण नम्रता माना है। नम्रता से ही ममुष्य सेवाभावी और परोपकारी बनता है। नम्रता का विपरीत गुण अहंकार है। अहंकार मनुष्य को पाप की ओर तथा नम्रता मनुष्य को सत्कर्मों की ओर प्रेरित करती है।

'नवन नवन जल सीतल अनल जैसे,
अननि ऊरध मुख तपत मलीन है।
....
तैसे ही असाध-साध अहंबुद्धि निम्रता कै
मन आ मजीठ गति पाप पुन्न कौन है।'[१४५]

जैसे नीचे की ओर बहने वाला पानी शुद्ध, स्वच्छ और शीतल होता है और ऊपर की ओर उठने वाली अग्नि की लपटें अशुद्ध और उष्ण होती हैं, इसी प्रकार अहं-कार से मनुष्य बुराई और दुराचार की ओर प्रवृत्त होता है तथा नम्रता से मनुष्य अच्छाई और सदाचार की ओर प्रवृत्त होता है। नम्रता के समान ही परोपकार की भावना भी मानव को सदाचार की ओर प्रवृत्त करती है। परोपकार की भावना से पारस्परिक सहानुभूति और सहयोग की भावना उत्पन्न होती है। साधु स्वभाव से परोप-कार करके ही दुखित जनों के कष्ट दूर हो सकते हैं।

'व्यथा अंते जैसे वैद उपचार करे,
व्यथा विरतांत सुन हरे दुख रोग को।
....
तैसे ही विवेकी जन पर उपकार हेत,
मिलत सलिल गति सहज संजोग को।'[१४६]

जैसे पीड़ित व्यक्ति का इलाज हकीम करते हैं और रोगी की पीड़ा को दूर करते हैं। ठीक वैसे ही सज्जन लोग विचारवान हैं। वह जल के समान संयोगवश मिलकर परोकार करते हैं।

'विरलो विवेकी जन परउपकार हेत
मिलत सलिलगति सर अवंग भूत को।'[१४७]

पर जो सन्त लोग जल के समान संयोगवश मिलकर परोपकार करते हैं, वे बिरले ही होते हैं। कोई विचारवान साधु लोग ही ऐसा करते हैं।

भाई गुरदास एक पूर्ण गुरसिक्ख मत के सैद्धान्तिक नियमों को अच्छी प्रकार जान चुके थे और सिक्ख दर्शन और उन्हें अपने दैनिक जीवन में पूर्णतः धारण कर चुके थे। जीवन की अनुभूति के माध्यम से उन्होंने अपने प्रचार कार्य को लोकप्रिय बनाया, विद्वानों से शास्त्रार्थ करके अपनी प्रतिभाशालीनता और दार्शनिकता की धाक जमाई। आपकी सम्पूर्ण रचना में आपकी अनुभूति की ही अभिव्यक्ति हुई है। जिसके साथ ही सिक्ख दर्शन भी साक्षात् प्रस्तुत हो गया है। अतः भाई गुरदास के कवित्त-सवैये गुरमत दर्शन की व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने सदाचार का आश्रय लेकर सामाजिक नैतिकता को बनाए रखने हेतु शुभ और अशुभ, करणीय और त्याज्य में भेद प्रस्तुत कर दैनिक शुद्ध व्यवहार को सिक्ख-दर्शन के माध्यम से प्रस्तुत किया। इस दृष्टि से भाई गुरदास एक आदर्श गुरसिक्ख, साहित्यकार और दार्शनिक सिद्ध होते हैं।

सन्दर्भिका

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी-साहित्य का इतिहास (काशी : नागरी-प्रचारिणी सभा, सं० २०३५), पृ० ४४.

२. प्रेमप्रकाशसिंह, गुरुनानक ते निर्गुण विचारधारा (पटियाला : भाषा-विभाग पंजाब, १९७३), पृ० २२.

३. गणपतिचन्द्र गुप्त, हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास (चण्डीगढ़ : भारतेन्दु भवन, १९६५), पृ० २१९.

४. जसवीरसिंह आहलूवालिया, सिक्ख फलसफे दी भूमिका, (अमृतसर : रवुबीर रचना प्रकाशन, १९७६), पृ० ९९.

५. प्रेमप्रकाशसिंह, गुरुनानक ते निर्गुण विचारधारा (पटियाला : भाषा-विभाग पंजाब, १९७३), पृ० २३

६. मिश्रबन्धु, मिश्रबन्धु-विनोद (लखनऊ : गंगा पुस्तक माला, १९७२), पृ० ११७.

७. करतारसिंह सूरी, गुरु अर्जुनदेव ते सन्त दादूदयाल (चण्डीगढ़ : पंजाबी लेखक-सदन, १९६९), पृ० १३६.

८. एम. जार्ज, भक्ति आन्दोलन और साहित्य (आगरा : प्रगति प्रकाशन, १९७८), पृ० १९०.

९. मोतीसिंह, निर्गुण साहित्य : सांस्कृतिक पृष्ठभूमि (वाराणसी : नागरी प्रचारिणी सभा, १९६२), पृ० २७.

१०. प्रेमप्रकाशसिंह, गुरुनानक ते निर्गुण विचारधारा (पटियाला : भाषा-विभाग पंजाब, १९७३), पृ० ३४.

११. वही, पृ० ३४.

१२. भाई गुरदास, कवित्त सवैये सटीक भाई गुरदासजी, सम्पा० गिआनी बिशनसिंह (अमृतसर : जवाहरसिंह किरपालसिंह एन्ड को०, १९७६), पृ० २.
१३. वही पृ० ८.
१४. वही, पृ० २४.
१५. वही, पृ० ५६.
१६. वही, पृ० ६७.
१७. वही, पृ० २१.
१८. वही, पृ० ४३.
१९. वही पृ० ४४.
२०. वही, पृ० ५०.
२१. वही, पृ० ३९.
२२. वही, पृ० १.
२३. वही, पृ० ६.
२४. वही, पृ० ८६.
२५. वही, पृ० २९६.
२६. वही, पृ० ३२८.
२७. वही, पृ० १६.
२८. वही, पृ० ६३.
२९. वही, पृ० ७८.
३०. वही, पृ० ९३.
३१. वही, पृ० १५९.
३२. वही, पृ० ६९.
३३. वही, पृ० ३४.
३४. वही, पृ० १०२.
३५. वही, पृ० २३६.
३६. वही, पृ० ३०२.
३७. वही, पृ० ३०८-३०९.
३८. वही, पृ० ७६.
३९. वही, पृ० ७६.
४०. वही, पृ० ८६.
४१. वही, पृ० २३१-२३२.
४२. वही, पृ० ८८.
४३. वही, पृ० १४१.
४४. वही, पृ० १४८.
४५. वही, पृ० १९४-१९५.
४६. वही पृ० ८६.
४७. वही, पृ० ८४.

४ | भाई गुरदास के कवित्त-सवैयों में सामाजिक नैतिकता

नैतिकता (नीति) क्या है ?

अर्थ—नैतिकता का मूल शब्द 'नीति' है। 'नीति' शब्द संस्कृत के नी + क्तिन् (प्रत्यय) लगाने से बनता है। नीयन्ते सलभ्यन्ते उपायादयः एहिकामुष्मिकार्था वा अनया। जिसका अर्थ है ले जाने की क्रिया, पथ-प्रदर्शन, चाल-चलन, आचार-पद्धति।'[1] वृहद् हिन्दी कोश में नीति अथवा नैतिकता का अर्थ अत्यन्त स्पष्ट रूप में बताया गया है। इसमें नैतिकता को लोकोपयोगी सिद्धान्त कहा गया है। 'वह आधारभूत सिद्धान्त, जिसके अनुसार कोई कार्य संचालित किया जाए, लोक-व्यवहार के लिए नियत किया गया आधार।'[2] भाई कान्हसिंह नाभा के **'महानकोश'** के अनुसार इसे मानव को श्रेष्ठ गुणों की ओर ही अग्रसर करने के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। 'वह रीति जिसके द्वारा आदमी सन्मार्ग पर चल सकें। धर्म और समाज के चलाने का नियम'[3] ही नैतिकता है।

संस्कृत के मूल शब्द 'नीति' का विशेषण रूप 'नैतिक' और भाववाचक संज्ञा 'नैतिकता' बना है। नैतिकता वास्तव में 'व्यवहार की वह नीति है, जिससे अपना कल्याण हो और समाज को भी कोई बाधा न पहुँचे। वह चाल जिसके चलने से अपनी भलाई, प्रतिष्ठा आदि हो और दूसरे की कोई बुराई न हो।'[4] व्यवहार के लिए, शुभ, कल्याणकारी एवं अच्छाई का संकल्प ही मानव-समाज के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है। अतः नैतिकता (नीति) का अभिप्राय दुर्गुणों से बचाकर मनुष्य को सद्गुणों की ओर प्रेरित करना है। नीति मनुष्य के आचार को संयमित एवं नियोजित बनाती है। जिसमें मानव सद्-व्यवहार के बल पर श्रेष्ठतर मानव कहलाता है। मानविकी पारिभाषिक कोश के अनुसार नैतिकता दर्शन का ही एक उपभाग है, जो मनुष्य को आदर्शों की ओर ले जाती है। दर्शन का वह पक्ष, जिसमें मानवीय व्यवहार का मूल्यात्मक विवेचन किया जाता है। इस विवेचन में औचित्य-अनौचित्य तथा शुभाशुभ का विचार विशेष रूप से होता है और यथासम्भव नैतिक-व्यवहार को नियमबद्ध करने का प्रयास भी किया जाता है।'[5] इन्साइक्लोपीडिया अमेरिकाना में भी इस बात की पुष्टि की गई है कि 'नैतिकता दर्शन की ही एक शाखा है, जिसमें मनुष्य के नैतिक कार्यों, निश्चयों का मूल्यांकन किया जाता है और उसके साधारण व्यवहार के विषय में जाना जाता है।'[6] नीति या नैतिकता मानव-व्यवहार की सद्वृत्तियों एवं सद्गुणों का ही विकास करती है। मानव का आचरण भी इन्हीं पर निर्भर करता है। अच्छे आचरण वाला व्यक्ति ही समाज में आदर पाता है। सदाचार मानवीयता का प्रथम गुण है। आदर्श जीवन बिताने के लिए सदाचारी होना अनिवार्य है। नैतिकता मानव को सदाचारी बनाने में परम सहायक है।

मानव-व्यवहार को ही दूसरे शब्दों में आचरण, चरित्र आदि कहा जाता है। नैतिकता ही शुद्ध आचरण सिखाती है। नैतिकता मानव-व्यवहार और आचरण के लिए आलोचनात्मक विषय वस्तु प्रस्तुत करती है।[७] निश्चयात्मक रूप से नैतिकता (नीति) मानव को व्यवहार, आचरण, चरित्र, सद्‌गुण, जीवन के ढंग, नियम तथा अनुशासन की ओर अग्रसर करती है। वास्तव में ये सभी पक्ष एक दूसरे से सम्बन्धित हैं, सद्‌गुणों से मनुष्य सदाचारी और सच्चरित्र बनता है। वह व्यवहार-कुशल एवं सुखद जीवन व्यतीत करता है। अतः नैतिकता मानव को सही जीवन-दिशा प्रदान करती है। 'नैतिकता शब्द का प्रयोग तीन अन्तर्सम्बन्धित बातों के रूप में किया जाता है। जैसे (१) साधारण रूप से जीने का ढंग, (२) व्यवहार के कुछ नैतिक नियम, (३) जीवन के ढंग या व्यवहार के नियमों के विषय में जाँच पड़ताल।'[८] नैतिकता मानव-व्यवहार को दिशा देकर उसके गुण-दोषों का नीर-क्षीर-विवेचन और विश्लेषण प्रस्तुत करती है। इस बात की पुष्टि इस कथन से भी हो जाती है—"नैतिक जीवन के विकास की प्रक्रिया में नैतिक-चेतना, नैतिक-आचरण एवं नैतिक निर्णय से सम्बन्धित समस्याएँ समायी होती हैं। तीनों स्तरों में समन्वित रूप से विकास हुआ करता है।"[९] नीति या नैतिकता का मानव-जीवन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह नियमित होने के कारण कुछ वैज्ञानिक भी है। सम्भवतः इसी कारण नैतिक सिद्धान्तों से सम्बन्धित इस ज्ञानानुशासन को नीति-शास्त्र की संज्ञा से अभिहित किया गया है। 'नियामक विज्ञान के रूप में नीति शास्त्र नैतिक आदर्शों की विवेचना करता है। यह नैतिक आदर्श विश्व की नैतिक व्यवस्था पर आधारित है।'[१०] मानव समाज की इकाई है। इसका सही मार्ग पर चलना समाज को एक दिशा देना है। प्रत्येक मानव द्वारा अपने कर्त्तव्य को निभाने में ही अपनी और समाज की भलाई है। मगर कई बार अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति में मनुष्य किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाता है। तब नीति-शास्त्र ही उसे अपने कर्त्तव्य की जानकारी देता है। तब ऐसी जटिल स्थिति में मार्गदर्शक के रूप में नीति-शास्त्र यह निर्णय करता है कि मनुष्य को क्या करना चाहिए? उसका क्या कर्त्तव्य है? उसके जीवन के क्या आदर्श हैं तथा उन्हें प्राप्त करने के क्या साधन होने चाहिएँ?[११] मानव को अपने कर्त्तव्य के प्रति जागरूक होने के लिए नैतिक गुणों का आश्रय लेना पड़ता है। वह संसार के अन्य कार्यों की अपेक्षा अपने नैतिक कर्त्तव्यों, सहयोग, सेवा, त्याग, परोपकार, प्रेम आदि गुणों से अपने सदाचार द्वारा दूसरों के प्रति उदार हो जाता है। यही प्रक्रिया उसके जीवन का अंग बन जाती है। 'जीवन के प्रत्येक क्षण तथा साधारण व्यवहार में भी उसका आचरण पवित्र और शुद्ध होने लगता है। उसमें और साधारण व्यक्ति में, जो नैतिक दृष्टि से बहुत नीचे है, आकाश और पाताल जैसा अन्तर हो जाता है।' दूसरे शब्दों में मानव के श्रेष्ठतम गुण, अच्छा स्वभाव और उसके आदर्श ही उसे नीतिवान् बनाते हैं। इससे एक अन्य बात स्पष्ट होती है कि किसी भी कार्य को सुचारु रूप से सूझ-बूझ के साथ करना ही नीति है। इसके लिए विवेक की अत्यन्त आवश्यकता होती है। अतः नीति का और विवेक का अति निकट सम्बन्ध है। मानव-जीवन के शुद्धाचरण के लिए तो इसे पर्याय के रूप में ही जानना चाहिए। इसके बिना तो मनुष्य पशु के समान है।

विवेक से ही मानवीय गुणों का विकास होता है, भले-बुरे की पहचान होती है, सामाजिकता का बोध होता है, कल्याण एवं त्याग की भावना पैदा होती है। पशुओं में विवेक का अभाव होने से ही वे मानवीय गुणों से वंचित रहते हैं। मात्र विवेक ही के कारण मानव की अन्य सभी जीवों से श्रेष्ठता सिद्ध होती है। विश्व के समग्र चेतना-सम्पन्न जीवों में केवल मनुष्य ही ऐसा जीव है, जिसे नैतिकता का बोध और अनुभव होता है। पशुजगत में नैतिकता का बिल्कुल ही अभाव नज़र आता है, क्योंकि उनमें भले-बुरे की पहचान करने वाली विवेकशील बुद्धि का अभाव है।'[१३] विवेक से ही मनुष्य सदाचारी बनता है। विवेक से उत्पन्न होने के कारण ही इसे ज्ञान माना गया है और अभ्यास के कारण यह आदत और फिर स्वभाव बन जाता है। उस व्यक्ति को अपने कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का आभास होने लगता है।' यह साधारण मीमांसा है, मनुष्यों के कार्यों पर अच्छाई-बुराई, उचित-अनुचित,शुभ-अशुभ निष्कर्षों के उत्पन्न होने की दृष्टि से विचार करता है।[१४]

सामाजिक-नैतिकता

'सामाजिक-नैतिकता' शब्द दो शब्दों के संयोग से बना है। 'सामाजिक' समाज शब्द का विशेषण है। अर्थात् समाज से सम्बन्धित नैतिकता। नैतिकता से अभिप्राय है 'किसी भी अच्छाई-बुराई को भली-भाँति जानकर अपने कर्त्तव्य का पालन करना। इसी कारण इसे दर्शन शास्त्र की शाखा भी माना जाता है। दूसरे शब्दों में यह नैतिक दर्शन है।'[१५] नैतिकता के दो प्रमुख पक्ष हैं व्यक्तिगत और सामाजिक। मूलतः दोनों एक ही हैं। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी होने के नाते समाज की एक ईकाई है। मानव-समूह ही तो समाज है। अतः व्यक्तिगत नैतिकता सामूहिक रूप में सामाजिक नैतिकता ही है। कई बार मनुष्य 'स्वान्तः सुखाय' कार्य करता है तो कई बार 'परान्तः सुखाय'। इसी में सामाजिक नैतिकता की भावना छिपी है। 'समाज में निष्काम भाव से सेवा कर्म करते हुए यद्यपि पूर्ण आत्म-लाभ नहीं होता है। फिर भी शाश्वत नैतिक साधना मनुष्य को पवित्र बनाकर परम शुभ की ओर ले जाती है।'[१६] यह भावना तभी उत्पन्न होती है, जब मानव स्वार्थ को छोड़ कर निस्वार्थ भाव से त्याग, दया, प्रेम, परोपकर, सहयोग व आत्मीयता की तपोमय मूर्ति बन जाते हैं। तब वे सदाचार के आदर्शमयी गुणों को अपनाकर अपना मार्ग प्रशस्त करते हैं। वे अपने सत्कर्मों और सत्प्रयत्नों द्वारा समाज के लिए आदर्श बन जाते हैं और समाज में फैली बुराइयों का निराकरण करते हैं। तब सदाचार ही उनका प्रधान लक्ष्य होता है, जो नैतिकता का प्रधान गुण है। इसी पर मानव का आचार, व्यवहार और कर्म निर्भर करता है। 'सदाचार यह बतलाता है कि किसी विशेष देश और युग के उन महा-पुरुषों ने किस प्रकार उसका पालन किया,जो समाज और असाधारण व्यक्तियों को उन्नत मार्ग पर ले चलने का प्रयत्न करते हैं।'[१७] नैतिकता सापेक्ष होते हुए भी निरपेक्ष है, क्योंकि यह सामाजिक कर्त्तव्यों की ओर भी प्रेरित करती है। यह मानवकेन्द्रित होते हुए भी समाज के लिए है। यद्यपि यह सत्य है कि नैतिकता सापेक्ष है, फिर भी सामाजिक कर्त्तव्य करने ही हैं, क्योंकि निरपेक्ष सत् अभेद में है और नैतिकता भेद पर आधारित है और यह यथार्थ जीवन का सत्य है।'[१८] नैतिकता के अन्तर्गत आने वाले या किए जाने वाले

व्यवहार को सामाजिक मर्यादा के अनुकूल ही ठहराया गया है। वह नीति जो दूसरों की स्वतन्त्रता में बाधक हो या, वह अच्छाई जो दूसरे के लिए कष्टदायी हो,नैतिकता या सदाचार की सीमा से बाहर है। हिन्दी-शब्द-सागर के अनुसार नीति या नैतिकता का अर्थ है, 'लोक व समाज-कल्याण के लिए उचित ठहराया हुआ आचार-व्यवहार, लोक-मर्यादा के अनुसार व्यवहार, सदाचार। लोक-मर्यादा के अनुसार व्यवहार, सदाचार=अच्छी चाल।'[१९] व्यवहार की दृष्टि से नैतिकता मानव-केन्द्रित है। अब प्रश्न यह पैदा होता है कि सम्पूर्ण नैतिकता अगर मानवकेन्द्रित है, तो सामाजिक नैतिकता का क्या महत्त्व है? इसके उत्तर में हम कह सकते हैं कि नैतिकता व्यक्ति का मार्ग दर्शन करती है। मानव का अकेला रहना कदाचित् सम्भव नहीं है। समाज में रहना मानव की मूलभूत प्रवृत्ति है। समाज में व्यक्तिगत विचारधारा की भिन्नता के फलस्वरूप अनेक समस्याएँ पैदा होती हैं। उनका निराकरण नैतिकता द्वारा ही होता है। सत्य-असत्य, ठीक-गलत, पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म का निर्णय करने का मानदण्ड यही नैतिकता है। 'व्यक्तिगत रूप में मनुष्य का सदाचारक विकास 'सचियार' के आदर्श की ओर प्रगति है। यह उसके विश्वास प्रबन्ध और आचरण में सबकी आन्तरिक कीमतों की कमाई है। सामाजिक पक्ष से यह नैतिकता मानव को एक जाति और सार्वजनिक मानवीय भाईचारे का सन्देश देती है।'[२०] मगर मानव में ऐसी कौन-सी शक्ति है, जो उसे अपनी सामाजिक समस्याओं को सुलझाने, शुभ-अशुभ को परखने एवं निर्णय देने की ओर प्रेरित करती है। मात्र वस्तुगत ज्ञान और तात्त्विक विवेचना से कार्य सम्भव नहीं है। मानव की आकांक्षाओं, भावनाओं, प्रवृत्तियों,संवेगों और उमंगों को नियंत्रित करने वाली शक्ति, जो सर्वोपरि है, वह है मानवीय चेतना। यह एक ऐसा प्रमुख तत्त्व है जो मानव को मानव से जोड़ता है। सेवा, त्याग, धर्म, कर्त्तव्य, परोपकार आदि सभ्यता के गुणों के कारण उसे एक-दूसरे के निकट लाता है। मानवीय चेतना का उपयोग समाज में ही होता है। बल्कि यदि यों कह दिया जाए कि चेतना मानव की सामाजिक भावना के ही कारण उत्पन्न होती है और सामाजिक भावना के वातावरण में ही विकसित होती है, तो अत्युक्ति न होगी।' इसका अर्थ यह है कि नैतिक मनुष्य को समझने के लिए सामाजिक प्रबन्ध को समझना भी आवश्यक है और व्यक्ति के विलक्षण व्यक्तित्व को भी।'[२१] नैतिकता का मानदण्ड निश्चित करने के लिए 'नीति शास्त्र' का प्रामाणिक आधार प्रस्तुत किया जाता है। मानव अपने जीवन में उन्हीं आदर्शों का नेतृत्व स्वीकार करता है, जो उसका सही दिशा में मार्गदर्शन करते हैं। उसके आचार-व्यवहार को समाज के लिए स्वीकार्य बनाते हैं। यही शुद्ध एवं स्वीकार्य आचार-व्यवहार सामाजिक नैतिकता की सामग्री के रूप में कार्य करता है। शुद्ध आचार-व्यवहार का आधार बुद्धि अथवा विवेक है। बुद्धि की सलाह मनुष्यों को पारस्परिक स्वार्थों की तथा अधिक सुरक्षा के लिए एक व्यक्त या अव्यक्त सामाजिक समझौते की ओर ले जाती है। नितान्त स्वार्थ से प्रारम्भ कर बुद्धिसंगतता, पारस्परिकता, समझौता, वचनबद्धता, नियमानुवर्तिता आदि सामाजिक-नैतिक तत्त्वों का इस दृष्टि में उदय एक प्रकार के बौद्धिक, बौद्धिक-व्यापार या 'कल्पित इतिहास' के माध्यम से किया जाता रहा है।'[२२] सामाजिक नैतिकता समुदाय की पारस्परिक सूझबूझ का

परिणाम होती है जिसका उद्देश्य होता है एक की खुशी दूसरे के लिए बाधक न हो। कोई अपने स्वार्थवश दूसरे को हानि न पहुँचाए। समाज एक संगठन का नाम है, जो सभ्य नियमों के कारण ही जुड़ा रहता है। नैतिकता इन सभ्य नियमों को बनाए रखने में सहयोग देती है। 'सामाजिक नैतिकता का आधार आचार के परिणामों पर होता है। सामाजिक जीवन के गुंझलदार प्रबन्ध में मनुष्यों के कार्यों के परिणामस्वरूप उपजे हुए परिणाम नैतिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होते हैं।'[२३] परिणाम कारण पर आधृत होता है। शुभ कार्य नैतिकता के कारण होता है और अशुभ अनैतिकता के कारण। निष्कर्षतः कह सकते हैं कि नैतिकता का सामूहीकरण ही सामाजिक नैतिकता है।

मध्यकालीन सामाजिक नैतिकता

उपयोगिता—ऐतिहासिक एवं साहित्यिक दृष्टि से मध्यकाल संघर्ष और उत्कर्ष का युग रहा है। विदेशियों के आगमन से भारत ने बहुत कुछ ग्रहण किया और उन्हें अपनी संस्कृति प्रदान की। यही काल भारतीय संस्कृति का पुनरुत्थान अथवा पुनर्जागरण काल कहलाया। इससे पूर्व भारत ने मौर्य, गुप्त और वर्धन आदि अनेक राजवंशों का उतार-चढ़ाव देखा। के० एस० नारंग ने तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए भारत को 'संघर्ष या युद्ध का अखाड़ा' नाम दिया है।[२४] दूसरी ओर हम देखते हैं कि ११९३ में गजनबियों के आक्रमण से भारत की राजनीति का नक्शा बदल गया।[२५] यह ठीक है कि विदेशी शासकों ने अपना राज्य स्थापित करने के बाद भारतीयों पर अत्याचार भी किए, लेकिन अपने शासनकाल में भारत की जो कायाकल्प की, उसे आँखों से ओझल नहीं किया जा सकता। भले ही अपने स्वार्थ हेतु उन्होंने अनेक प्रशंसनीय कार्य किए, मगर अन्ततोगत्वा लाभ भारतीय जनता को ही हुआ। भारत की श्रीवृद्धि हुई और मार्गदर्शन हुआ। दो संस्कृतियों और सभ्यताओं के सयोग से नए समाज का संगठन हुआ। "मुसलमानों के कारण भारतीय जाति-व्यवस्था को काफी धक्का लगा था, क्योंकि मुस्लिम जिस 'मजहब' में विश्वास रखते थे, उसमें जाति का कोई स्थान नहीं था।'[२६] कारण भले कोई भी हो, मध्यमाल में पूर्ववर्ती अनेक बुराइयाँ दूर हो गईं। हिन्दू-समाज में बाल-विवाह और सती-प्रथा जैसी कुरीतियों का निषेध किया गया। शासन-व्यवस्था कठोर होने के कारण इन्हें जबरदस्ती दबा दिया गया। 'राजपूत स्वयं मुसलमान बादशाहों के साथ अपनी बेटियों के विवाह करने लगे थे। ऐसा करके भी वे जाति-बहिष्कृत नहीं हुए और न उनका धर्म ही नष्ट हुआ।'[२७] सबसे अधिक सुधार मुगलकालीन शासन-व्यवस्था में हुआ। मुगलपूर्वकाल में भारतीय जनता की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। जनता करों के बोझ से दबी जा रही थी। कृषि और व्यापार मन्द पड़ गए थे। शेरशाह, अकबर और परवर्ती मुगल बादशाहों ने कृषि, व्यापार तथा उद्योग में अपनी विशेष रुचि दिखाई। परिणामतः विदेशों का धन भारत में आने लगा। करों का बोझ हलका होने से जनता को राहत मिली और भारत समृद्ध हुआ। १५६४ ई० में अकबर ने भेद-भाव को मिटाने के लिए जजिया और तीर्थ कर भी हटा दिए। शोषित और शोषक के सम्बन्ध भी सामान्य हुए। सामन्ती व्यवस्था को अत्यन्त बुरी तरह से धक्का

लगा। 'सामन्ती समाज-व्यवस्था अपनी सार्थकता खोती जा रही थी और व्यापार के सहारे पूँजीवादी व्यवस्था स्वरूप ग्रहण करने लगी थी।......मुगल बादशाहों ने व्यापार के विकास द्वारा इस सामन्ती व्यवस्था की जड़ों को हिला दिया।'[28] मगर मध्यकाल में सामन्तीय व्यवस्था की भूमिका भी अविस्मरणीय है। सामन्तीय प्रथा में ही दोनों जातियों की कला, संस्कृति और साहित्य को एक मंच पर एक साथ आने का अवसर मिला। मुसलमानों के आगमन से साहित्य, स्थापत्य, संगीत, चित्रकला आदि क्षेत्रों में समन्वय के संकेत मिलते हैं। मुसलमान अपने साथ एक संस्कृति लेकर आए थे और उसे समुन्नत करने के लिए भारत की श्रेष्ठ संस्कृति से उसका सुमेल चाहते थे। इससे पूर्व भारतीयों और विदेशियों के पारस्परिक कलह राजनैतिक और धार्मिक कारणों से इतना भयंकर रूप धारण कर चुके थे कि रक्तपात भी होने लगा था। अकबर के विषय में कहा है, 'इस गहरी खाई को पाटने के लिए सम्भवतः सभी धर्मों के सन्तों एवं विद्वानों को एक साथ एकत्र करना उसने आवश्यक समझा होगा, अन्यथा एक निश्चित धर्म, मत पर आस्था रखने वाले व्यक्ति को अन्यों के सिद्धांतों से प्रयोजन ही क्या हो सकता है।'[29] यह धारणा सर्वथा गलत सिद्ध होती है कि मुसलमानों ने भारतीयों पर अत्याचार किए। हाँ, कुछ सीमा तक इसे स्वीकार किया जा सकता है, पूर्णरूपेण नहीं। उनके निर्मम और बर्बर होने का कारण था उनका शासक होना। इसका लाभ उठाते हुए वे साधन नहीं, साध्य देखते थे। अतः हिन्दुओं के धर्म-परिवर्तन एवं इस्लाम के प्रचार हेतु वे कोई भी नीच से नीच काम करने पर उतर आते थे और स्वयं विलासिता का जीवन बिताते थे। लेकिन सर्वत्र ऐसा नहीं हुआ। एम० पी० श्रीवास्तव के शब्दों में 'ठीक कहा जाए तो इस्लाम जज़िया के भय तथा बल के आतंक से कम फैला, मगर मुस्लिम सन्तों और फकीरों के प्रभाव से अधिक फैला।'[30] मात्र अवसर पड़ने पर ही वे कोई कठोर कदम उठाते होंगे। उनकी नीति यह रही कि उन्होंने अपने प्रतिद्वन्दी को सदा झुकाने का प्रयत्न किया। जब दोनों संस्कृतियों का सीधा सम्पर्क स्थापित हुआ, तो सामंजस्य की भावना और समन्वय की चेतना परिलक्षित होने लगी। अपने-अपने धर्म-विश्वासों, रीतिरस्मों और आचार-विचार-पद्धतियों तथा संस्कारों से दोनों ने एक दूसरे को प्रभावित किया। प्रभावित ही नहीं, कुछ एक विशेषताओं को ग्रहण भी किया। इस्लाम के प्रभाव के कारण हमारी वैदिक एवं पौराणिक मान्यताएँ खण्डित होती जा रही थीं। इसी कारण मुस्लिम सन्तों और फकीरों ने जनता को अपने चंगुल में फँसा कर सभी रूढ़ियों से और अन्धविश्वासों से मुक्ति दिलवाई। उनके अनुसार 'शास्त्र की दुहाई देने की अपेक्षा स्वानुभूति पर निर्भर करना अधिक श्रेयस्कर है। इसी आस्था के कारण विपक्षी अथवा विरोधी के प्रति सहिष्णुता-भाव का प्रादुर्भाव होता है और न्यायोचित उदार व्यवहार का शुभारम्भ होता है।'[31] मध्यकाल के शासकों में अनेक त्रुटियाँ थीं, मगर उन्होंने देश के लिए जो किया वह अविस्मरणीय है। साहित्य, कला (चित्रकला, संगीत, वास्तुकला)संगीत और न्यायप्रणाली में जो सुधार हुए,वे आज भी भारतीय और मुस्लिम समन्वय के प्रतीक रूप में हमारे बीच विद्यमान हैं। सबसे बड़ी बात तो यह हुई कि विदेशों से व्यापार आरम्भ हुआ। 'इन शताब्दियों में भारत ने व्यापार द्वारा सन्तुलित

लाभ उठाया। संसार के सभी देशों से सोना-चाँदी भारत में आया। बड़ी सड़कों और यातायात के नए साधनों तथा भूमि-सुरक्षा सम्बधी नए नियमों द्वारा नया उत्साह मिला।'[३२] कला की उन्नति भी मुगलकालीन देन है। मुगल शासक अत्यन्त विलासी एवं प्रकृतिप्रेमी थे। वे अपनी खुशी के लिए धन लुटाने में हिचकिचाते न थे। यही प्रभाव तत्कालीन सामन्तों, जागीरदारों और मनसबों पर भी पड़ा। वे जिस प्रकार की कला की कल्पना करते, उसी को साकार रूप देने में कोई कसर न छोड़ते। उन्होंने अपने अधीन कई-कई चित्रकारों, संगीतकारों, विद्वानों और कई प्रकार के कलाकारों को नियुक्त किया होता था, जो उनकी रुचि के अनुसार काम करते थे। अकबर के दरबार में नवरत्न भी कलाकार ही थे। मुगल सम्राट् प्रकृति और कला के अत्यन्त प्रेमी थे और उनके व्यक्तित्व की झलक किसी सीमा तक उनके साहित्य और कला में देखी जा सकती है।'[३३] इसमें भी दोनों जातियों की कलाओं का समन्वय स्पष्ट परिलक्षित होता है। इस समय वास्तुकला का चरमोत्कर्ष देखने को मिलता है। सभी मध्यकालीन शासकों ने अपने समय में अनेक प्रकार की इमारतों की रचना की, जो अपने आपमें अद्वितीय है और आज भी अपने युग की मुँह-बोलती तस्वीरें हैं। 'हिन्दू-मुस्लिम वास्तुकला के इतिहास में शेरशाह द्वारा निर्मित इमारतों का तत्कालीन भारतीय-मुस्लिम शैली में सम्पर्क स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण स्थान है।'[३४] इससे सामाजिक जीवन में जनता के पारस्परिक सम्बन्धों को दृढ़ बनाने में सहयोग मिला। धार्मिक क्षेत्र में भी एक-दूसरे के सिद्धान्तों को अपनाने में तनिक संकोच नहीं किया गया। 'मुगल साम्राज्य की नींव पड़ने के पश्चात् इस्लाम बड़ी तेजी से फैला। बहुत से हिन्दुओं ने इस्लाम को स्वीकार किया और इस प्रकार हिन्दू और मुस्लिम दोनों एक दूसरे के निकट सम्पर्क में आए।'[३५] रीति-रिवाजों, रस्मों, त्यौहारों तक का आदान-प्रदान हुआ। हिन्दू-मुस्लिम के भेदभावों को भुला कर आपसी भाई-चारे की भावना से सभी ने एक-दूसरे को गले लगाया। अकबर ने हिन्दुओं के 'रक्षा बन्धन' को महत्त्व दिया, तो हिन्दू और मुसलमान दोनों मिलकर ईद मनाते थे। 'इस्लाम के आगमन से कुछ नई सामाजिक शक्तियों ने हिन्दू-समाज को प्रभावित किया। मुसलमानों में अपने ही देश में औरतों के प्रति सख्त पाबन्दी तक एक साधारण बात थी। हिन्दुओं ने पर्दा-प्रथा को अपनी औरतों की इज्जत बचाने हेतु सुरक्षा साधन के रूप में अपनाया।[३६] दास-प्रथा अन्यतम बुराई थी। स्त्रियों और बच्चों को बेचा जाता था। धीरे-धीरे परिस्थितियों के बदलाव के साथ-साथ इस कुरीति की समाप्ति हुई। हाँ, इससे जातिगत और दलगत भेदभाव की भावना अवश्य दूर हुई, जो उस समय की परिस्थितियों के अनुसार समाज पर एक कलंक थी।' हिन्दुओं में अन्तर्जातीय विवाह करने की प्रथा नहीं थी। मगर मुसलमानों में ऐसी पाबन्दी न थी। उन्हें अपने निकटवर्ती सम्बन्धों में से चुनाव करने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी।'[३७] इसका प्रभाव हिन्दू समाज पर भी पड़ा। उनका क्षेत्र भी विस्तृत हुआ। उदार दृष्टिकोण के कारण ही वे पुनः संगठित हुए। भक्ति-आन्दोलन ने इसमें अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। निराश जनता जब इस्लाम की ओर आकृष्ट हुई, तो भारतीय संस्कृति की रक्षा हेतु महात्माओं, सन्तों और गुरुओं ने अपने-अपने ढंग से

अपने मत का प्रचार आरम्भ कर दिया। कबीर, सूर, तुलसी, जायसी, नानक आदि अनेक महापुरुषों ने अपने-अपने धर्म के माध्यम से कुछ नैतिक सिद्धान्तों का प्रचार किया और जनता का उचित मार्ग-दर्शन किया। इन्होंने हिन्दू और मुस्लिम धर्मों के सिद्धांतों का समन्वय कर भारतीय रूढ़ियों और कुरीतियों का खण्डन करके आदर्श सिद्धान्तों की स्थापना कर समाज को एक नई दिशा प्रदान की। फलस्वरूप सत्साहित्य की रचना हुई। इन सन्तों और गुरुओं ने अपने संदेश व उपदेश गेय शैली में प्रस्तुत किए। जायसी और रसखान ने अनेक भारतीय मिथकों को अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया। श्रीकृष्ण रहीम और रसखान के इष्ट बने। गुरु नानक और कबीर ने राम और रहीम की अभेदता का सन्देश दिया। सम्पूर्ण गुरमत-काव्य इन्हीं विशेषताओं से भरा पड़ा है। तत्कालीन सामाजिक मर्यादा को बनाए रखने में और जनता में जागृति लाने हेतु सिक्ख सम्प्रदाय ने जो प्रयत्न किए, इतिहास इसका साक्षी है। समन्वय-पद्धति इन्हीं की देन है, जिससे भारत की गौरव-गाथा में श्रीवृद्धि हुई।' प्रेम, समानता और शान्ति के द्वारा हिन्दू अपने सामाजिक जीवन के मूल्यवान पक्षों को इस्लाम के आक्रमणों से बचाने में सफल सिद्ध हुए।'[३८] सामाजिक और आध्यात्मिक गुरुवत्ताओं के कारण ही सिक्खधर्म आज भी अमर बेल के समान फैल रहा है। गुरु नानक सिक्ख धर्म के प्रवर्तक थे, वे तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति एवं कुरीतियों से भी भली भाँति परिचित थे।' मध्य-युगीन परिस्थितियों का गम्भीर अध्ययन करके समस्याओं के सन्तोषजनक समाधान के लिए उन्होंने सिक्खधर्म की स्थापना की। धर्मसंस्थापक के रूप में उन्होंने परि-स्थितियों के अनुरूप अपना संदेश दिया।'[३९] गुरुनानक की शिष्य-परम्परा में दस गुरु हुए हैं। प्रत्येक गुरु ने समाज को सही दिशा देना अपना धर्म समझा। सभी गुरुओं ने अपने उपदेश काव्य शैली में दिए हैं। गुरमत के सिद्धान्तों का पालन एवं प्रचार इनका प्रमुख उद्देश्य रहा है। पाँचवें गुरु अर्जुनदेवजी ने भाई गुरदास की सहायता से १६०४ ई० में 'आदि ग्रंथ' का सम्पादन करवा कर एक महान् कार्य किया। भाई गुर-दास ने अपने काव्य द्वारा इसकी व्याख्या भी प्रस्तुत की, जिसके कारण धर्म और साहित्य के क्षेत्र में इनकी वाणी को 'गुरबाणी की कुंजी' होने का गौरव प्राप्त हुआ। इन्होंने अपनी वाणी द्वारा समाज को सिक्ख धर्म का महत्त्व और सिक्खधर्म के माध्यम से सामाजिक नैतिकता का सन्देश दिया। एक आदर्श सिक्ख ही आदर्श मानव और आदर्श नागरिक के गुणों से युक्त हो सकता है। भाई गुरदास ने गुरबाणी के सन्देश को अपनी कविता द्वारा अत्यन्त सरल शब्दों में प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है।

मध्यकालीन सामाजिक नैतिकता : प्रभाव और देन

मध्यकाल में समाज की अत्यन्त जर्जर अवस्था का अनुमान तत्कालीन परि-स्थितियों से हो जाता है। लोग निराश और हताश हो चुके थे। सनातन वैदिक धर्म का ह्रास हो जाने एवं कट्टरता से उकता जाने के कारण जनता निराश्रय हो गई थी। इस प्रकार उनका अपने धर्म से विश्वास उठ गया। धर्म का पतन होने का अर्थ है नैतिक-पतन। समाज अनैतिकता की आग में जलने लगा। यही पतन विदेशियों के आग-मन का कारण बना। अनेक धार्मिक नेताओं और सन्तों ने मानवीय मूल्यों की स्थापना

की। लोगों को 'सत्य' का मार्ग दिखाया। इसके लिए शासक वर्ग की ओर से भी यदा-कदा सहायता प्राप्त होती थी। अकबर का 'दीने इलाही' इसी की प्रतिक्रिया का परिणाम है। ईश्वरवादी दृष्टिकोण अपनाकर मानव-जीवन को अध्यात्म और दर्शन से जोड़कर धर्म के अंकुश द्वारा इसे सन्मार्ग की ओर ले जाया गया। 'मध्यकाल तक आते-आते देश की सामाजिक स्थिति ही नहीं, राजनैतिक, आर्थिक एवं धार्मिक अवस्था भी बदल चुकी थी। समाज की रूपरेखा बदल जाने तथा एक विदेशी संस्कृति के अन्तर्मिश्रण के कारण उसके नियम विधान में अपेक्षित परिवर्तन स्वाभाविक था।'[४०] आदान-प्रदान एवं समन्वयात्मक आचार-व्यवहार के द्वारा कुछ नवीन एवं प्राचीन अमर नैतिक तत्त्व सामने आए। 'भारतीय श्रुतियों-स्मृतियों से निरपेक्ष होते हुए भी उनके उपदेशों में स्मृतियों का अमर वाक्य'आचार: परमो धर्म:' का स्वर गुंजरित था।'[४१] तत्कालीन सन्तों और गुरुओं ने भारतीय संस्कृति और सभ्यता को नया जीवन-दान दिया। सत्य का साधक होने के नाते वे आत्म-साधना एवं अनुभव के बल पर अपने सिद्धान्तों का प्रचार करते थे। अनुभव के बल पर ही इन्होंने अपने जीवन को सादा, स्पष्ट और सत्य की प्रयोगशाला बनाकर जनता के सामने नैतिक मूल्यों का जो उदाहरण प्रस्तुत किया, उसका दूसरा उदाहरण अन्यत्र नहीं मिलता है। मध्यकाल में सामाजिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण उपलब्धि यह रही कि मानव-जीवन का आध्यात्मिक पक्ष दैनिक जीवन से एकरूप हो गया और एकता की भावना से मानवीय गुणों का विस्तार हुआ। ईश्वरमुखी होने से तथा गुरु का उपदेश मानने से मानव सदाचारी होता है। व्यक्ति के बाद परिवार, पुन: समाज आता है। मध्यकाल में गृहस्थाश्रम को अत्यन्त महत्त्व दिया गया है। विरक्ति की अपेक्षा अपने गृहस्थ सहित भक्ति को अत्यन्त श्रेष्ठ बताया गया है। अपने उत्तरदयित्व को निभाने, ग्रहण मुक्त होने और आत्मिक शान्ति पाने का स्वर्णावसर गृहस्थाश्रम में ही मिलता है।

'ग्यानन में ग्यान अर, ध्यानन में ध्यान।
गुर सकल धरम में, ग्रिहसत प्रधान है ॥' ३७६॥[४२]

गृहस्थ धर्म सभी धर्मों से श्रेष्ठ है। इसीलिए भाई गुरदास ने कहा, 'मध्यकाल में उदित लगभग सभी सन्त-महात्मा सद्गृहस्थ थे। सत्य, ईमानदारी, प्रेम तथा सद्भावना पूर्ण वातावरण में जीविकोपार्जन करते तथा परोपकारयुक्त जीवन यापन करते थे।'[४३]

सामाजिक नैतिकता का अन्य पक्ष, जनता का समाजवादी एवं समतावादी दृष्टिकोण है। मध्यकालीन समाज जाति-पाँति के अनेकानेक वर्गों में विभक्त था। छूआ-छूत का प्रचलन था। इसे मुस्लिम, हिन्दू और सिक्ख गुरुओं ने बड़े सत्प्रयत्नों से दूर करने में सफलता प्राप्त की।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कुछेक अपवादों को छोड़ कर मध्यकालीन सामाजिक नैतिकता मानव को मानव के प्रति स्नेह, दया, प्रेम, त्याग, सेवा, सद्भावना, परोपकार, सदाचार, धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष आदि मानव-हितकारी नैतिक सद्गुणों की ओर प्रेरित एवं अग्रसर करती है।

सामाजिक नैतिकता

मानव अपने जीवन में उन्हीं आदर्शों का नेतृत्व स्वीकार करता है, जो उसे सही दिशा में मार्ग-दर्शन करते हैं। उसके आचार-व्यवहार को समाज के लिए स्वीकार्य बनाते हैं। यही शुद्ध एवं स्वीकार्य आचार-व्यवहार सामाजिक नैतिकता की सामग्री के रूप में काम करता है। नैतिकता का मानदण्ड काल, स्थिति एवं स्थान के आधार पर निर्धारित होता है। कुछ सार्वभौमिक तत्त्व हैं अवश्य, मगर उनकी व्याख्या और परिभाषा में अन्तर है। जैसे 'धर्म' की ही अनेक परिभाषाएँ हो सकती हैं। मध्यकाल में भारतीय समाज की स्थिति कुछ ऐसी ही थी। धर्म की अनेक शाखाएँ-उपशाखाएँ हो गईं। धर्म का ह्रास हो रहा था।

'यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत !
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥'[४४]

के अनुसार सिक्खधर्म के प्रवर्त्तक गुरु नानक प्रभृति महापुरुषों का आविर्भाव हुआ। उन्हीं के सिद्धान्तों को आगे चलकर 'सिक्ख सम्प्रदाय' का नाम दिया गया, जिसकी शिष्य-परम्परा में भाई गुरदास का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। आपने तत्कालीन सामाजिक स्थिति का अध्ययन कर सिक्खधर्म का प्रचारक होने के नाते गुरुनानकजी के नैतिक सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार किया। 'वास्तविक प्रचार का माध्यम प्रचारकों की अपनी गुरमुखी रहनी थी।'[४५] जनता को सन्मार्ग पर लाने की चेष्टा की 'मध्यकालीन परिस्थितियों में आचरण के नव-व्यवस्थित स्वरूप की उत्कट अपेक्षा थी। पुरातन सामाजिक, मूल्य अपर्याप्त सिद्ध हो रहे थे।'[४६] ऐसे समय में सन्तों ने मार्ग-दर्शन किया और आपके अनुसार 'गुरमुख' होना ही एक अच्छे मनुष्य की पहचान है। आपने गुरमुख के गुणों की व्याख्या अपने कवित्तों में तथा वारों में की है और उसे दैनिक जीवन के अनुभवों द्वारा मौलिकता प्रदान की। आपका धार्मिक दृष्टिकोण अत्यन्त प्रबल था। गुरमत सिद्धान्तों की व्याख्या करने में आप सिद्धहस्त थे। आपने यह जान लिया था कि धर्म के बिना नैतिकता कदापि सम्भव नहीं है।' धर्म और आचार दोनों की नींव एक ही भाव में है और वह भाव है जाति और समाज की वृद्धि। जो मत धर्म को जाति और समाज की बृद्धि का आवश्यक साधन मानते हैं, वे आचार की दीवार भी धर्म की नींव पर ही निर्मित करेंगे।'[४७] भाई गुरदास ने भी ऐसा ही किया। उन्होंने मध्यकालीन सामाजिक व्यवस्था का गहन अध्ययन किया और मर्यादित जीवन जीकर जनता को गुरमत का सन्देश देते हुए सिक्खधर्म का प्रचार और प्रसार किया। उन्होंने सामाजिक नैतिकता का आधार धर्म को माना। प्रत्येक मानव को धर्म के निकट लाने हेतु मानवीय गुणों का सही अर्थ समझाया; सिक्ख, गुरु, वाहिगुरु, गुरमुख, साधसंगत, सद्व्यवहार चिन्तन-मनन आदि की व्याख्या प्रस्तुत करके अपने काव्य के माध्यम से सिक्खधर्म का प्रचार और प्रसार किया और प्रत्येक सिक्ख को मर्यादित और सदाचारक जीवन बिताने का अमर सन्देश दिया, ताकि धर्म और आचार का नाता बना रह सके। भाई गुरदास ने गुरवाणी की व्याख्या प्रस्तुत करके श्री गुरु नानक के सिक्खधर्म को ही विकसित किया है। हाँ, कुछ मौलिक परिवर्तन भी मिलते हैं। मगर वह परिस्थितियों की ही देन

हैं। वैसे उन्होंने गुरुओं के सन्देश को सिर माथे ग्रहण किया और उनकी आज्ञानुसार प्रचार और प्रसार किया। भाई गुरदास ने सामाजिक नैतिकता हेतु अपने काव्य में जिन तत्त्वों का उल्लेख किया है, वे गुरवाणी के मूलाधार हैं। संक्षेप में भाई गुरदास ने नैतिकता के प्रचार हेतु गुरवाणी के जिन पारिभाषिकों की व्याख्या प्रस्तुत की, वे निम्नलिखित हैं—

प्रमुख आधार

१. आध्यात्मिक पक्ष

गुरु—गुरवाणी के अनुसार गुरु का महत्त्व ईश्वर के समान है। सभी सन्तों और कवियों ने मध्यकालीन भक्ति-काव्यधारा में गुरु को अपना सर्वस्व माना है। कुछेक ने तो गुरु को ईश्वर से भी बढ़कर माना है, सतगुरु ही ईश्वर का ज्ञान कराने वाला है।

"सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपगार।
लोचन अनंत उघाड़िया, अनंत दिखावणहार।'[४८]

गुरु शब्द की व्युत्पति गृ+वु, उत्त्व प्रत्यय (तुलनात्मक गरीयस गरिष्ठ) धातु से हुई है। जिसका अर्थ है भारी, बोझिल, महान, दीर्घ अथवा अध्यापक (गृणाति उपदिशति धर्मं गिरति अज्ञाने वा,यद्वा गीयंते स्तूयन्ते देवगन्धर्वादिभिः।[४९] अतः गुरु ज्ञान को देने वाला है और अज्ञान रूपी अंधकार को नष्ट करने वाला है। 'वास्तव में गुरु सिक्ख सम्प्रदाय की धार्मिक व्यवस्था का मेरुदण्ड है। सिक्ख मत की सिद्धान्तगत व्यवस्था का यह इतना महत्त्वपूर्ण अंग है कि इसके बिना सिक्ख मत की कल्पना भी नहीं की जा सकती।[५०] गुरु ही सिक्ख या शिष्य को मार्ग दर्शाता है और उसे सन्मार्ग की ओर प्रेरित करता है। मानव-जीवन का चरम लक्ष्य आनन्द की प्राप्ति है। आनन्द भी साधारण लौकिक नहीं, अपितु आलौकिक, स्वर्गिक आनन्द। वह तो मोक्ष अथवा परमात्मा के मिलन से ही सम्भव है।' इसलिए परमेश्वर की प्रकाशक ज्ञान शक्ति को गुरु कहा है। अतः गुरु एक व्यक्ति मात्र नहीं, अपितु ज्योति स्वरूप है,जिसके द्वारा जीव का उद्धार हो सकता है।[५१] गुरवाणी में ऐसे गुरु को ईश्वर का ही रूप माना गया है। नानक, जो धर्म के प्रथम गुरु हैं, उन्हें ईश्वर रूप कहा गया है। या वह व्यक्ति जिसने ईश्वर को पा लिया है, वह गुरु है।

'सति पुरुख जिन जानिया,
सतगुर तिस का नाऊँ।
तिस के संगि सिक्ख उधरे
नानक हरि गुन गाऊँ॥'[५२]

अथवा आसा राग में गुरुवाणी में लिखा है—

गुरु गोविन्द, गोविन्द गुरु है,
नानक भेद ना भाई।[५३]

इसी प्रकार नानक जी के सिद्धान्तों का पालन करते हुए भाई गुरदास ने भी गुरु के महत्त्व को अपने काव्य में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है

'अगमु अपार अनन्त गुरु,
अविगत अलख अभेद,
पारब्रह्म पूरन ब्रह्म
सतगुर नानक देव।'[54]

उन्होंने गुरु के भी वही गुण बताए हैं, जो निराकार ईश्वर के हैं। अतः वे गुरु को ईश्वर का ही रूप मानते हैं और नानकदेव को ही अपना सद्‌गुरु मानते हैं—

इस सत्‌गुरु के प्रेम व उपदेश द्वारा ही मनुष्य अपने मन को एकाग्र करके परम-पद या मोक्ष को पा सकता है। जैसा भाई गुरुदास ने कहा है—

'उलट पवन मन मीन की चपल गति,
सतगुर परचे परम पद पाए हैं।'[55]

अतः भाई गुरुदास ने भी मोक्ष अथवा परम पद की प्राप्ति हेतु गुरु के ज्ञान को आवश्यक माना है, जो गुरुमत-सिद्धान्तों के अनुकूल है।

सिक्ख—सिक्ख शब्द गुरुमत की देन है। यह संस्कृत के मूल शब्द 'शिष्य' से बना है। शिष्य-शब्द की व्युत्पति शास् + क्यप् प्रत्यय से हुई है (शिष्यतेऽसौ) जिसका अर्थ है विद्यार्थी, शागिर्द, चेला।'[56] गुरुमत के अनुसार सिक्खधर्म को धारण करने वाला ही सिक्ख है। सिक्खधर्म में 'सिक्ख' शब्द का परम्परागत अर्थ के रूप में प्रयोग किया जाता है। महान कोश के अनुसार 'सिक्ख' शब्द का अर्थ है. 'गुरुनानकदेवजी का अनुगामी।' जिस ने सत्‌गुरु नानकदेव का सिक्ख धर्म धारण किया है, जो श्री गुरु ग्रन्थ साहिब को अपना धर्म-ग्रन्थ मानता है और दस सद्‌गुरुओं को एक रूप जानता है।'[57] सिक्ख-धर्म में सिक्ख को गुरु के सम्मुख होना बताया गया है, जो सदा गुरु के चरणों में ध्यानस्थ रहता है। गुरवाणी के अनुसार—

'आपु सदा रहै परणे,
गुर बिन अवर न जाणे कोइ।
कहे नानक सुनहु संन्तहु
सो सिक्ख सनमुख होइ।'[58]

गुरबानी में सिक्ख की मर्यादा, रहन-सहन, खान-पान, आचरण, व्यवहार आदि पर विस्तार पूर्वक प्रकाश डाला गया है। मन की शुद्धता पर भी बल दिया गया है। मन की शुद्धता ही एक मनुष्य को अच्छा सिक्ख या शिष्य बना सकती है।

'मनि मैले सूचा किउ होइ
साची मिले पावे पति सोई।'[59]

(सिरी, ५, प-२३, ५०)

इसी प्रकार भाई गुरुदासजी ने भी 'सिक्ख' की व्याख्या अनेक स्थानों पर प्रस्तुत की है। उन्होंने सिक्खी का प्रचार करते समय सिक्ख की मर्यादा को प्रथमतः महत्ता प्रदान की। स्वयं पर अनुशासन और आचरण लागू करके ही सिक्ख समाज में आदर्श की स्थापना कर सकता है और गुरु की कृपा का पात्र बन सकता है। श्रद्धा और नम्रता उसके दो विशेष गुण हैं। इस प्रकार के सिक्ख गुरु की शिक्षा को प्रेम और चाव से

अपने हृदय में धारण करते हैं। ये सर्वकलासम्पूर्ण होते हैं और ईश्वर रूप हो जाते हैं। इस प्रकार वे सतुगुरु का स्वरूप होकर वाहिगुरु को दिन-रात अपने हृदय में याद रखते हैं।

'गुर सिक्ख सन्धि मिले गुर सिखय पूण्ण हौवे
गुर सिक्ख पूरन ब्रह्म पहिचाने है।'[६०]

इस कवित्त के अनुसार भाई गुरदास ने पूर्ण सिख को ही वाहिगुरु का स्वरूप माना है। कोई भी व्यक्ति गुरमुख होकर ही पूर्ण मर्यादित सिख हो सकता है।

गुरमुख—सिक्खधर्म में 'सिक्ख' के समान ही गुरमुख शब्द का भी अत्यन्त महत्त्व है। वैसे देखा जाए तो गुरमुख, सिक्ख शब्द का ही पर्याय है। मगर दोनों में मौलिक अन्तर है। सिक्ख शब्द का क्षेत्र विकसित है, तो गुरमुख शब्द का संकुचित। महान कोश के अनुसार 'गुरुमुख वह पुरुष है जो गुरु के सन्मुख है।'[६१] सिक्ख मात्र शिष्य है। श्रद्धाभाव उसकी इच्छा-अनिच्छा पर निर्भर करता है। मगर गुरु को सन्मुख रखकर उसकी आज्ञानुसार जीवन बिताने वाला गुरमुख है।'[६२] सिक्ख के समान ही गुरमुख की भी एक मर्यादा है। उसके लक्षण हैं, कसौटी है। गुरमुख सदा नाम जपता है और पाँच विकारों काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार को अपने नियन्त्रण में रखता है।'[६३] एक महान व्यक्ति के सभी गुणों का समन्वय करके गुरुमुख का व्यक्तित्व निर्धारित किया जा सकता है। गुरु नानकदेव ने अपने गुरुमत में जिस आदर्श मानव की परिकल्पना की थी, उसे ही उन्होंने गुरुमुख की संज्ञा से अभिहित किया। वह एक आदर्श व्यक्ति है दैवी गुणों से युक्त। वह देवता तो है मगर स्वर्ग का नहीं, इस धरती का।' गुरमुख का देवत्व किसी परीलोक का अजूबा नहीं, इस मृत्युलोक में ही उसका विकास होता है। माया में रहकर भी माया से अतीत रहना गुरमुख की सबसे बड़ी विशेषता है।'[६४] भाई गुरुदास ने गुरमुख के हृदय में गुरु के उपदेश का निवास अनिवार्य माना है, जिससे यह प्रकट सिद्ध है कि एक आदर्श सिक्ख का गुरमुख होना अनिवार्य है।

'गुरु उपदेस रिदै निश्चित निवास जान
ध्यान गुरु मूर्ति के पूरन ब्रह्म है।'[६५]

इतना ही नहीं, गुरमुख सदा साधुओं की संगति में रहता है और अन्य सामान्य लोगों में आनन्द भाव से रहता है।

'गुरु मुख साधु चरणामृत परमपद
गुरु मुख पन्थ अविगति गति न्यारी है।'[६६]

गुरमुख मन, कर्म, वचन से एक रूप होकर ईश्वर रूप हो जाता है।

'गुरमुख मन बच करम ईक भए,
अंग अंग बिसम स्वंग में समाए हैं।'[६७]

इतना ही नहीं, गुरमुख योग और भोग दोनों से ऊपर अतीत होकर वाहिगुरु का ध्यान करते हैं।

'मन बच क्रम सुध साधा ध्यातम क्रम,
गुरमुख सुख सरषोतम निधान है।'[६८]

निष्काम कर्म करते हुए इन्द्रिय-निग्रह करके उन्होंने ईश्वर को पा लिया है।

मनमुख (मनमुखी)—'गुरमुख' के समान ही गुरबानी में 'मनमुख' शब्द की भी विस्तृत व्याख्या की गई है। स्पष्ट है कि 'मनमुख' शब्द गुरमुख का विपरीत है। यह पद दो शब्दों मन और मुख से बना है। मनमुख वह व्यक्ति है, जो सदा अपने ही मन के पीछे लगे और मनमानी करे।[६९] इसी प्रकार 'मनमुख' का आचरण, व्यवहार, रहन-सहन भी 'गुरमुख' के विपरीत होता है। 'गुरमुख अच्छे सुन्दर जीवन का सूचक है, तो मनमुख बुरे, भद्दे जीवन का। गुरमुख वह है जो गुरु की शिक्षा के अनुसार प्रभु परायण होकर चलता है। इसके विपरीत गुरमत त्याग कर मायापरायण विरति अधीन चलने वाला मनमुख है।[७०] मनमुख ईश्वर और गुरु के प्रति विमुख रहता है और सांसारिक विषयों में लिप्त रहता है। संसार के विषय-विकारों में लिप्त रहने के कारण वह 'शब्द' अथवा 'नाम' की ओर अग्रसर नहीं होता है।

'नामु न चेतहि, सबदु न विचारहि
इह मनमुख का आचारू।'[७१]

(वार गुजरी, ३(१)५,५०९)

नाम के बिना वह झूठ, पाप और संताप की अग्नि में तो जलता है, मगर हरि का स्मरण नहीं करता।

'मनमुख की मति कूड़ि वियापी,
बिनु हरि सिमरण, पापि संतापी।'[७२]

(आसा १, प-२४, ३५६)

भाई गुरदास ने भी कहा है—

'दुरमति दुबिधा भ्रमत है चतुर कुंट,
गुरमति एक टेक मौन न बकत है।'[७३]

दुरमति के कारण ही मनमुख संसार की चारों दिशाओं में भटकते फिरते हैं और गुरमुख सतगुरु का आश्रय ग्रहण करने के कारण अपने मुँह से बुरा शब्द नहीं कहते। दुर्मति होने के कारण ही मनमुख पर-तन और धन से लिप्त रहते हैं, लेकिन गुरमुख गुरमत के कारण निर्लेप।

'गुरमुख मनमुख दुरमति गुरमति
परतन धन निरलेप ध्यान है।'[७४]

इस प्रकार चन्दन के समान गुरमुख श्रेष्ठ गुणों से युक्त परोपकारी होता है, लेकिन मनमुख विकारी बाँस के समान अपने ही वर्ण को दुखित करने वाला होता है।

'मनमुख गुरमुख चन्दन औ' बाँस विधि
बन के दोखी विकारी उपकारी सनमानी।'[७५]

इस प्रकार भाई गुरदासजी ने भी अपने कवित्तों में 'मनमुख' की व्याख्या गुरवाणी के आधार पर ही की है, जिसके माध्यम से अनैतिक तत्त्वों को दर्शाया है।

साध-संगत—साध-संगत सिक्खधर्म की एक महत्त्वपूर्ण देन है। यह 'संगत और पंगत' प्रणाली के माध्यम से ही प्रचलित हुई है। साधुओं की संगति करना ही साध-संगत है। महान कोश के अनुसार, इसका अर्थ है, "नेक सुहबत"[७६] अर्थात् अच्छी संगति या अच्छे (सज्जन) लोगों की सभा। (सत्+जन) सज्जन लोगों का संग करने से मनुष्य के स्वभाव और आचरण पर भी अच्छा प्रभाव पड़ता है। इसलिए सिक्ख धर्म में इसे 'सत-संगति' भी कहा गया है। मगर गुरमत के अनुसार सतसंग का अर्थ है, 'जिस मनुष्य-समूह (एकत्रता) में परमात्मा, जो कि सत् स्वरूप है, की चर्चा की जाए वह एकत्रता सत्संगत है।'[७७] गुरमत के अनुसार सतसंग नाम-स्मरण करने का एक मात्र स्थान है, जहाँ सामूहिक रूप से शब्द-कीर्तन अथवा भक्ति-भावना से ईश्वर का नाम व गुरु का उपदेश किया जा सकता है।' क्योंकि मनुष्य एक 'भाईचारे' वाला जीव है। इसलिए श्रेष्ठ संगति का जीवन-परिवर्तन में बहुत बड़ा योगदान है। इसीलिए अच्छे 'गुरमुखों', साधु पुरुषों के सम्पर्क पर बहुत अधिक बल दिया गया है, सत्संगति मनुष्य की एकत्रता मात्र नहीं, अपितु वह स्थान है, जहाँ सदा नाम का व्याख्यान, कीर्तन होता है।'[७८] इस साध संगत या सत् संगति की प्राप्ति प्रत्येक मानव को सुलभ नहीं है, इसके लिए जन्म-जन्मान्तरों तक की भक्ति की आवश्यकता होती है। पूर्व जन्म के सत् कर्मों के आधार पर अथवा ईश्वर-कृपा होने पर ही सत्संगति की प्राप्ति होती है।

'हरि कीरति साध संगति है,
सिर करमन कै करमां
कहु नानक तिस महऊ प्रापत
पूरब लिखे का लहना।'[७९] (सोरठि ५, ३-१, ६४२)

अतः सत्संगति में ही मनुष्य ईश्वर का स्मरण कर अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। वह भी पूर्व कर्मों के पुण्य फल की प्राप्ति के बाद। भाई गुरदास जी के अनुसार जिस प्रकार आकाश में बादल (परजन्य) परोपकार हेतु आते हैं, उसी प्रकार साधु संगति भी उपकार के कारण ही है। जैसे वर्षा से सभी खजाने अनाज से पूर्ण हो जाते हैं, ऐसे ही साध-संगत में नाम जपने से सभी खजाने मिल जाते हैं। यथा

'सहज समाध साध संगत सखा मिलाप,
गगन घटा घमण्ड जुगति ते जानीअै।
....
सहज समाध लिव निझर अपार धार
बरखा अंम्रित जल सरब निधानिअै।[८०]

इतना ही नहीं, साध संगत में अधम भी अच्छे धर्मात्मा पुरुष बन जाते हैं, जैसे पान में चूना।

'साध संग अधम असाध ह्वै मिलन जब,
जथा ज्यों तंबोल रस रंग प्रघटावई।'[८१]

सद्व्यवहार—नैतिकता का प्रमुख तत्त्व सद्व्यवहार अथवा सदाचार है, जिसे दूसरे शब्दों में आचरण कहा जाता है। प्रत्येक व्यक्ति का अपना-अपना व्यवहार अथवा आचरण होता है। जिसके माध्यम से वह दूसरों से बर्ताव करता है। अच्छे ढंग से ही मनुष्य एक-दूसरे के प्रति सहानुभूति, प्रेम, अहिंसा, निस्वार्थ भाव व एकता की कल्पना कर सकता है। 'नीति दर्शन में इस धारणा का महत्त्वपूर्ण लाभ यह है कि पारस्परिक द्वेष, वैर-भाव, अनृत्य, क्रूरता, नृशंसता, किसी को हानि पहुँचाने की दुर्भावना आदि नहीं पनप सकते।'[८२] सिक्ख मत में इसी सदाचार अथवा सद्व्यवहार को गुरमत सिद्धान्तों का आधार माना गया है। एक सिक्ख अथवा गुरमुख का सदाचार रहित होना सिक्खधर्म अथवा गुरु को स्वीकार्य नहीं है। वास्तव में 'मानव-समाज में कैसे विचरना है, इसकी आचारसंहिता क्या है? संक्षेप में कहें तो गुणों का ग्रहण और अवगुणों का त्याग, सदाचार का मूल मन्त्र है।'[८३] महान कोश के अनुसार इसे 'उत्तम क्रिया, नेक चलन, भला व्यवहार' अर्थों द्वारा स्पष्ट किया गया है। साधारण व्यक्ति के सदाचार और एक सिक्ख अथवा गुरमुख के सदाचार में मौलिक अन्तर है। सिक्ख अथवा गुरमुख का सदाचार गुरमत अथवा गुरु के सिद्धान्तों पर आधारित है। गुरमुख का सदाचार एक आदर्श सिक्ख बनने के लिए है, जो जनता का मार्ग-दर्शन कर सके और एक साधारण व्यक्ति का सदाचार समाज में अच्छा जीवन बिताने के लिए है। सिक्खधर्म का सद्व्यवहार अपने गुरु के उपदेश पर आधारित है। कहा भी है—

'पेईअड़ै सहु सेवि तूं साहुरड़ै सुखि वसु
गुरु मिलि अजु आचार सिक्ख तुधु
कदे न लगै दुखु।'[८४] (सिदी, ५, २१-२३, ५०)

इतना ही नहीं, जो गुरमुख इस आचार का पालन नहीं करते हैं और नाम-स्मरण, शब्द-विचार नहीं करते हैं, उन्हें मनमुख की संज्ञा से अभिहित किया गया है।

'नामु न चेतहि, सबदु न वीचारहि,
इहु मनमुख का आचारु।'[८५]
(वार गुजरी ३ (१) ५, ५०६)

भाई गुरदास के अनुसार गुरमुख जो अपने सद्व्यवहार से दूसरों को भी अपने जैसा बना देते हैं। वे नमस्कार के योग्य हैं।

'गुर सिक्ख साध संग ब्रह्मसधान सति,
कीरतन समै होइ सावधान सम है।
गुरमुख भखनी भक्ति भाऊ चाऊ सति,
सहज सुभाउ गुरमुख नमो नम है।'[८६]

गुरमुखों का स्वभाव पानी के समान शीतल और मोम के समान नर्म है। लेकिन मनमुखों का लाख और पत्थर के समान कठोर।

'तैसे गुरसिक्खन सुभाउ जल मैठा गति
साकत सुभाऊ लाख गतन सें।'[८७]

ऐसा व्यक्ति अच्छे आचरण वाला कैसे हो सकता है ?

रहन-सहन—रहन-सहन सदाचार का ही एक अंग है। मनुष्य के रहन-सहन का भी उसके व्यवहार पर सीधा प्रभाव पड़ता है। व्यक्तिगत रूप में मनुष्य किस प्रकार का जीवन व्यतीत करता है और समाज के दूसरे लोगों के साथ वह कैसे रहता है, कैसा व्यवहार करता है; उसका, जागना, उठना, बैठना, बोलना, चलना सब उसके रहन-सहन में शामिल हैं। फिर एक सत्कारण व्यक्ति तथा गुरमुख के रहन-सहन में तो बहुत बड़ा अन्तर है। गुरमुख की एक मर्यादा है। उसके सिद्धान्त हैं। उसे अपने गुरु के अनुरूप चलना है। उसका रहन-सहन अपने धर्म की श्रेष्ठता के लिए है। उसे सत्य का मार्ग अपनाना है। मात्र अपने इष्ट की ही आराधना करनी है।

'मनि सांचा मुखि साँचा होई
अवरु न देखे एक बिन कोई।'[८८] (सुखमनी अष्टपदी-८)

वह उद्यम से नाम स्मरण की कमाई द्वारा अपने ईश्वर से मिलता है और सांसारिक चिन्ताओं से मुक्त हो जाता है।

'उदमु करेन्दियां जीऊ तूं,
कमाद दिआ सुख मुंधु
पिआदिआ तूं प्रभु मिल,
नानक उतरी चिन्त।'[८९]

गुरमुख अपने जीवन को गुरु के चरणों में अर्पित कर देता है। उसका रहन-सहन सिक्खधर्म के आदर्शों के अनुकूल होता है।

भाई गुरदास ने सिक्ख की रहनी-सहनी को अत्यन्त महत्त्व दिया है। उनके अनुसार एक सिक्ख को गुरु की शरण ग्रहण करके अहंकार को खोकर और दूषण रहित होकर परलोक में सुख और मोक्ष की प्राप्ति होती है।

'आपा खोइ, जोइ गुर चरन शरन गहे,
रहे निरदोख मोख अनंद बिनोद के।'[९०]

वह एक ही सत्य रूप, सत्यनाम, सत्यगुरु का ध्यान करता है। जैसे मछली का जल के प्रति अगाध स्नेह होता है, वैसा ही ध्यान वह अपने गुरु के प्रति रखता है।

'सतिरूप, सतिनाम, सतिगुरु, ज्ञान-ध्यान,
एक टेक सिक्ख जल मीन ह्वै दिखावई।'[९१]

ऐसे ही गुरु के सिक्ख गुरु के उपदेश से निष्काम कर्म करने वाले बन कर आशा रूपी संसार से निराश रहते हैं और नम्रता के कारण अचल सुख के द्वारा अपने उद्देश्य को प्राप्त करते हैं।

गुर उपदेश निरकाम औ निरास भए
निम्रता सहज सुख निअ पद नाम को।'[९२]

अतः गुरु-उपदेश-ग्रहण, नम्रता, परोपकार, नामस्मरण, साध-संगति द्वारा

सद्‌गुणों को ग्रहण करना आदि सभी बातें सिक्ख के रहन-सहन को साधारण से विशेष बनाती है।

खान-पान—सिक्ख मर्यादा के अनुसार सदाचार का एक पक्ष खान-पान भी अपनी विशिष्ट महत्ता रखता है। मन को नियन्त्रण में रखना, एकाग्र चित होकर ईश्वर का स्मरण करना आदि बातें खान-पान पर भी निर्भर करती हैं। तामसिक भोजन अर्थात् दूसरे का कमाया हुआ भोजन खाने से विकार पैदा होते हैं। सिक्ख को केवल अपने हक और परिश्रम का अन्न कमाकर खाने को कहा गया है। सिरी राग में—

'बाबा होरु खाना खुसी सुआरु
जितु खाधे तनु पीड़ीए,
मन महि चलहि विकार।'[९३]

वैसे भाई गुरदास की ने तो सिक्ख के लिए लौकिक पदार्थों की आवश्यकता ही अनुभव नहीं की। उनके अनुसार तो सिक्ख के लिए उसके गुरु का शब्द रूपी भोजन ही अमृत है, जिसे पाकर वह अमर हो जाता है और भोजन की आवश्यकता ही नहीं रहती।

गुर सिक्ख संग जो जो जागत अम्रित जोग
सबद प्रसादि मोखपद परवानी जै।'[९४]

उन्होंने दसों नाखूनों की कमाई को महत्त्व दिया है। दूसरी कमाई की निन्दा की है।

'तैसे माया किरत बिरत है, बिकार जग,
परउपकार गुर सिक्खम सूअंग है।'[९५]

चिन्तन : मनन—सिक्ख मत में चिन्तन-मनन का अपना ही ढंग है। वह समाधिस्थ होने अथवा भारतीय प्राचीन परम्परागत चिन्तन से भिन्न है। गुरु के चरणों में ध्यान लगाना उपदेश और शब्द द्वारा नाम-स्मरण एवं आदर्श मर्यादा एवं सिक्खधर्म के सिद्धान्तों का पालन ही सिक्खधर्म में चिन्तन और मनन है। मन की एकाग्रता और पाँचों बिकारों को नियन्त्रित करना चिन्तन की प्रथम शर्त है। हुऊमे अथवा अहंकार का नाश चिन्तन के लिए अनिवार्य है।

'मनुआ दहदिसि धावंदा
ऊहु कैसे हरि गुण गावै,
इन्द्री बिआपि रही अधिकाई
कामु क्रोधु नित सतावै।'[९६] (वडहंस झ-२, ५६५)

ऐसा मनुष्य भला चिन्तन कैसे कर सकता है? उसके लिए तो—

इसु तन महि मनु को गुरमुखि देखे
भाइ भगति जा हउमे सोखे।'[९७] (माझ ३, झ-२३, १२४)

भाई गुरदास के अनुसार 'शब्द' द्वारा वह अपने मन की मैल को दूर करके ही अपने गुरु के चरणों में लीन हो सकता है। 'शब्द' की प्राप्ति उसे गुरमुखों की सत-संगति में ही हो सकती है।

'साध संग दरशन को है नित नेम जांको
सोई दरशनी सम दरश धियानी है।
शब्द विवेक एक टेक जाके मन बसै,
मान गुर ग्यान सोई ब्रह्म गिआनी है।'[९८]

गुर सिक्ख सब में अपना ही मन जानते हैं और ब्रह्म वाहिगुरु का रूप गुरुओं की मूर्ति का ध्यान करके उनकी पूजा करते हैं। पूजा से तात्पर्य यहाँ भाई गुरदास ने चिन्तन से ही लिया है।

'जैसे कुल बधू बुधवंत सुसरार विखै,
सावधान चैतन रहे अचार धार कै॥
....
तैसे गुरसिख सरआतम प्रवीन पूजा,
ब्रह्म धिआन गुर मूरति अपार कै।'[९९]

मगर इस पूजा अथवा चिन्तन हेतु मन के विकारों को दूर करना पड़ता है, गुर के चरणों में शरण लेनी पड़ती है और दूषणों से रहित होना पड़ता है। तब कहीं गुरु के चरणों से प्रीति होती है। यही चिन्तन की स्थिति है।

'मन मोद को आपा खोइ जोइ गुरचरण
शरण गहे, रहे निरदोख मोख अनन्द
विनोद को।

तब वह नाम-स्मरण एवं साध-संगत में शब्द-कीर्तन द्वारा तद्रूप हो जाता है और उसे ईश्वर की सर्वव्यापकता का आभास होने लगता है। अर्थात् वह उसके रहस्य को जान लेता है।

'जैसे कुल धर्म कर्म जैसो जैसो काको
उत्तम के मान जान ब्रह्म थिर को।'[१००]

इस प्रकार सिक्खधर्म में चिन्तन का अत्यन्त महत्त्व है।

२. धार्मिक-पक्ष

तप : तपस्या—महान कोश के अनुसार 'तप' शब्द का अर्थ है 'गर्म होना, जलना, तप करना, दुख सहन करना, शरीर को तपाने वाला व्रत।'[१०१] भक्ति के द्वारा ईश्वर को पाने के अनेकानेक मार्गों में से 'तप' सबसे जटिल मार्ग है। इसमें तपस्वी अपने इष्ट को रिझाने व पाने हेतु अपने मन को एकाग्र करने के लिए अपने को कष्ट में डालता है। उतनी देर तक कष्ट सहन करता रहता है, जब तक उसका लक्ष्य पूरा न हो जाए। 'आमतौर पर भारतीय धर्म-साधना में मन को साधने के लिए शरीर को कठिन तितिक्षा में से गुजारा जाता है। जैसे भूखे रहना, नंगे रहना, कपड़ा न पहनना,

सोना नहीं अथवा कोई अन्य सुख-सुविधा स्वीकार न करना, यह सब कुछ तप-साधना है।'[१०२]

सिक्खधर्म में तप का अन्य रूप भी विद्यमान है। इसमें तप में कष्ट साधना जरूरी नहीं है। मात्र गुरु की इच्छानुसार विचरना ही तप है। उसकी इच्छा के विरुद्ध तप करके अपने इष्ट को पाने की कोशिश का कोई फल नहीं है। जो सिक्ख अपने सतगुरु को अच्छा लगने वाला तप (आज्ञा-पालन) करता है, वह सतगुरु की नजरों में अच्छा समझा जाता है। भाव यह है कि वही अच्छा गुरमुख है।

'सो जपु सो तपु जि सतिगुर भावै,
सतिगुर के भाणै वडिआई पावै।'[१०३]

(बार गुजरी ३ (३) ५०६)

'तप' केवल शारीरिक कष्ट तक ही सीमित नहीं है। 'तप' का उद्देश्य है इष्ट को रिझाना। भले ही साधन कोई भी हो, सिद्धि एक ही है 'मुक्ति'। सिक्ख धर्म में 'शब्द' कीर्तन व नाम-स्मरण भी तप ही है। गुरमुखों की सतसंगति करना भी तप ही है। भाई गुरदासजी के अनुसार—

'अध्यातम करम प्रमातम परम पद
तत मिल ततहि परमतत बासी है।
....

अस्रित कयलश दिव्य देह के बिदेह भए,
जीवन मुक्त कोऊ बिरलो उदासी है।'[१०४]

भाई गुरदासजी ने मात्र गुरमुख होने को ही एक अच्छा तपस्वी माना है। उन्होंने द्वैत भाव से दूर, माया से परे, त्रिगुणातीत, समदर्शी व विकार सहित ऐसे मनुष्य को, जिसने छः दर्शनों को जान लिया है और छल-कपट को जान कर उनसे बचने का उपाय कर लिया है। निष्काम होकर दसम द्वार को पहुँच गया है। सबसे बड़ा (उदासीन) तपस्वी माना है।

'गुरमति सति एक टेक दुतीआ नास्ति
......खट, दरशन परे पार ह्वै सपतसर
नव द्वार उलंघ दसम्मई उदासी है।"[१०५]

पाठ-पूजा—वैसे तो पूजा और पाठ दोनों अलग-अलग शब्द हैं। मगर भक्ति क्षेत्र म दोनों का एक साथ प्रयोग होता है। पूजा क्रियात्मक है, तो पाठ वाणी का अभ्यास है। ये भारतीय प्राचीन परम्परा के आध्यात्मिक परिभाषिक हैं। ये दोनों भक्ति के ही अंग हैं। बल्कि भक्ति का एक ढंग पूजा व पाठ भी है। 'भक्ति' शब्द संस्कृत की धातु 'भज्' से बना है, जिसके अर्थ हैं सेवा व आराधना करना, पूजना भजन करना आदि।

'परमात्मा की सेवा पूजा ध्यान नाम-स्मरण लौ में रहने वाली मन की भावना को भक्ति कहते हैं।'[१०६]

गुरमत के अनुसार पूजा को तो इतना महत्त्व नहीं दिया गया, लेकिन पाठ को

अनिवार्य माना गया। पूजा को एक आडम्बर मान लिया गया, क्योंकि ईश्वर तो अच्युत पूजा के योग्य है। दिखावा मात्र उसके लिए पर्याप्त नहीं है। फूल, फल आदि भेंट व्यर्थ है।

'अचुत पूजा जोग गोपाल
मनु तनु अरपि रखऊ हरि आगे
सरब जिआ का है प्रतिपाल।'[१०७]

(बिलावल ५०प, १६, ८२४)

केवल गुरमुख ही जान सकता है कि उसका इष्ट कैसी पूजा चाहता है। मात्र अपने सतगुरु की भाणा (इच्छा) को मन में बसाना ही सच्ची पूजा है।

'गुरमुख होवे सु पूजा जाणै
भाणा मनि बसाई।[१०८]

(रामकली, ३, झ-३, ९१०)

भाई गुरदास जी ने पूजा का एक दूसरा पक्ष भी स्पष्ट किया है। उन्होंने अपने गुरु की मूर्ति के (स्वरूप के) ध्यान को ही पूजा कहा है। अपने ही मन जैसा दूसरों में जाकर तथा गुरु में ब्रह्म का आरोपण करके ही ईश्वर की आराधना करनी पड़ती है। इससे श्रेष्ठ पूजा अन्य नहीं है।

"जैसे कुल बधू बुधवन्त सुसरार बिखै,
....

तैसे गुरसिख सरवातम प्रवीन पूजा,
ब्रह्म धिआन गुर मूरति अपार के।'[१०९]

भाई गुरदासजी ने पूजा-पाठ को जाप का ही रूप बताते हुए कहा है कि वे जीव जो सतनाम के नाम का जाप करते हैं उनके पाँचों विकार दूर हो जाते हैं और उन्हें मोक्ष की प्राप्ति होती है।

'जैसे अनीबान की रहत टूट देही बिखै
चुम्बक दिखइ ततकाल निकसत है।
....

तैसे पाँचों दूत भूत बिभ्रम ह्वै भागजात,
सतिगुर मन्त जन्त रसना रसत है।"[११०]

गुरमत में पूजा-पाठ को 'नाम स्मरण' के माध्यम से महत्त्वपूर्ण बताया गया है। उस 'अकाल पुरख' वाहिगुरु के 'नाम-स्मरण' से ही अनेक प्रकार के कष्ट दूर होते हैं।

"जपत अकाल काल कटक क्लेस नासे
निरभै भजन भरम ऐ दल भजाए हैं।'[१११]

गुरवाणी में पूजा की अपेक्षा पाठ का अत्यन्त महत्त्व है। मगर पाठ मात्र वाणी को पढ़ने का ही नाम नहीं है। पाठ का अभिप्राय है मन, वचन और कर्म की एकग्रता द्वारा वाणी में लीन होकर उसका पूर्ण आनन्द लेना तथा मन पर पूर्ण नियन्त्रण रखना। यही उचित पाठ है।

'पढ़ि पढ़ि पोथी सिम्रति पाठा,
वेद पुराण पढ़ै सुणि थाटा,
बिनु रस राते मनु बहु नाटा।'[११२]

(गऊडी, १, झ-११, २२६)

भाई गुरदास ने पूजा का धन आदि खाने हेतु नाम-स्मरण को अत्यधिक अनिवार्य कहा है। उनकी दृष्टि में नाम-स्मरण (पाठ) और पूजा का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। उनके अनुसार—

'जैसे तों अरोग भोग भोगवे नाना प्रकार,
बिथावन्त खानपान हिदे न हितावई।
....
तैसे गुर परचै पवितर है पूजा प्रसादि
अपचु अपरचे दुसह दुख पावई।'[११३]

अतः भाई गुरदास ने पाठ को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना है।

तीर्थस्थान : तीर्थाटन—भारत एक धर्मप्रधान देश है। अतः भारत भूमि तीर्थों की भूमि है। तीर्थ-स्थान धर्म के गढ़ माने जाते हैं। धर्म के स्रोत होने के नाते अनेकानेक धार्मिक व पौराणिक कथाएँ इन तीर्थों से जुड़ी हैं। इन तीर्थस्थलों के प्रति भारतीयों को इतनी श्रद्धा है कि किसी भी तीर्थ-स्थान की यात्रा अन्धविश्वास के बल पर ही सैकड़ों, हजारों, करोड़ों यात्री प्रतिवर्ष करते हैं। महान कोश के अनुसार 'तीर्थ अथवा तीरथु का अर्थ है पवित्र अस्थान, जहाँ धर्म भाव से लोक पाप दूर करने के लिए जाएँ।[११४] आश्चर्य की बात है कि हमारे ऋषियों, मुनियों, गुरुओं व सन्तों ने जितने भी तीर्थ स्थलों का उद्घाटन किया, वे सब वैज्ञानिक दृष्टि से स्वास्थ्य के लिए बहुत ही अनुकूल हैं। पहाड़ी स्थानों पर घर से दूर सुरम्य वातावरण, सरोवरों का शीतल जल, आकर्षक भवन, पौराणिक पृष्ठभूमि भारतीय सभ्यता व संस्कृति के रूप में अपने पूर्वजों की रिक्थ को देखकर किसे प्रसन्नता नहीं होती। 'गुरमत के अनुसार धर्म की शिक्षा और स्पर्श मात्र को मुक्ति का साधन निश्चित किया है। गुरमत के अनुसार धर्म की शिक्षा और इतिहास की घटना से कोई काम लेने हेतु तीर्थों पर जाना उत्तम है।'[११५] गुरवाणी में तीर्थों पर जाने को ही 'तीर्थाटन' तथा वहाँ जाकर निर्धारित सरोवर के जल में स्नान करने को ही तीर्थ-स्नान कहा है।' हिन्दू मनौत के अनुसार अठारह तीर्थों का स्नान मुक्तिदाता माना गया है। यह प्राचीनकाल के धर्म केन्द्र थे, जहाँ जाकर यात्री स्नान करके और पुण्य करके अपनी आत्मा को पवित्र करते थे।"[११६] भाई गुरदास जी ने ऐसे अनेक लोगों की बात अपने निम्नलिखित कवित में की है, जो तीर्थों पर जाकर अपने पापों को धोकर मोक्ष पाना चाहते हैं।

"तीर्थ पुरब देव जात्रा जात है जगत्
पुरब तीरथ सुर कोटिन कोटान के।"[११७]

ाकर स्नान करने से मानसिक सन्तुलन और शान्ति मिलती है और शरीर पवित्र होता है। भाई गुरदास लिखते हैं—

'तीरथ मज्जन करबे को है गुनाऊ
इह निरमल तन त्रिखा तपश निवारिए।'[११८]

इसके शीतल और निर्मल जल से स्नान करने से शरीर की तपश (गर्मी) और प्यास दूर होती है।

भाई गुरदास ने तीर्थों को भी इसीलिए पाप निवारक माना है, क्योंकि वहाँ पर भी वाहिगुरु के चरण-कमलों का प्रभाव है। तीर्थ-स्थान भी गुरु के चरणों की शरण में पड़े हुए है। ऐसे स्थलों पर स्नान करने से गुरु-कृपा से मनुष्य के सभी कष्ट दूर हो जाते हैं।

'चरन सरन गुर तीरथ पुरब कोटि,
देवी देव सेव, गुर चरन सरन है।'[११९]

भले ही भारतीय सभ्यता इन तीर्थों से जुड़ी हुई है। मगर सिक्ख-मत में गुरु को ही सबसे बड़ा तीर्थ माना गया है। इस मत के अनुसार प्रत्येक तीर्थ में गुरु के निवास की कल्पना की गई है। इसके बिना सब तीर्थ व्यर्थ हैं। भाई गुरदास ने एक ही कवित्त में अनेक तीर्थों की नाम-माला दी है।

'सुरसरी, सुरस्वती जमना औ गोदावरी,
गया, पाग, सेत, कुरुखेत मानसर है,
काशी, कांची, द्वारावती, माया, मथरा, अयुधिया,
गोमती, अवंतका, किदार, हिमधर है,
नरबदा, बिंबिथवन देव स्थल कयलास,
नील, मन्दराचल, सुमेर गिरवर है,
तीरथ अरथ सत धरम दया संतोख,
स्त्री गुरु चरण रज तुल न सगर है।''[१२०]

जितने भी उपरोक्त तीर्थ हैं और जितने भी धन आदि पदार्थ हैं अगर उनमें गुरु का निवास नहीं है, तो वे सबके सब गुरु के चरण-कमल की धूलि के भी बराबर नहीं। अतः तीर्थाटन व स्नान का महत्त्व गुरु चरणों की प्रीति से ही है। अन्यथा सब व्यर्थ है।

३. सामाजिक पक्ष

रीति-रचना-परिपाटी पर श्रृंगारिक रचना

भाई गुरदास का काव्य भले ही रीतिकालीन काव्य-परम्पराओं से ओत प्रोत है, तो भी उनकी कविता में भक्ति का पूर्ण प्रभाव है। लेकिन उनके काव्य पर पड़े तत्कालीन वातावरण के प्रभाव से आँखें नहीं मूँदी जा सकतीं। हो भी कैसे, कवि या लेखक युग-द्रष्टा और स्रष्टा दोनों की भूमिका निभाता है। उस पर अपने युग की परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता ही है। भाई गुरदास के समय में भी एक ओर महलों में राज-कवियों द्वारा दरबारों में श्रृंगारिक रचनाएँ रची जा रहीं थीं, तो दूसरी ओर भक्ति के क्षेत्र में भक्त कवियों द्वारा भक्तिवाणी की रचना की जा रही थी। इसी समय में गुरुग्रन्थ साहिब

का सम्पादन (१६०४ ई०) हुआ। मगर भाई गुरदास की रचना में भक्ति के साथ ही श्रृंगार पक्ष भी प्रबल है। 'भाई गुरदास ही एक मात्र ऐसे कवि हैं, जिन्होंने हिन्दी क्षेत्र में रहने के कारण रीतिकाव्य से प्रभाव ग्रहण करके भक्ति-काव्य में आत्मा के मिस नायिका भेद की चर्चा की है।'[१२१] इन्होंने स्त्री पुरुष के सम्बन्धों द्वारा आत्मा-परमात्मा के अनेक उदाहरणों से यह सिद्ध किया है कि स्त्री-पुरुष के प्रेम की तरह ईश्वर-प्रेम भी स्वाभाविक ही है। उसमें भी एक आकर्षण है। भाई गुरदासजी ने अपने काव्य में लौकिक प्रेम को अलौकिक की ओर ले जाने हेतु गुरमुख की पतिव्रता स्त्री से तुलना करते हुए कहा है—

नारि भरतार के सनेह पतिव्रत होई
गुर सिख एक टेक पतिव्रत लीन है।
... .

सजन कुटुम्ब ग्रिह गौन करे पतिव्रता,
आन देव थान जैसे जल बिनै मीन है।'[१२२]

भाव यह है कि गुरसिख भी पतिव्रता स्त्री के समान एक ही स्वामी (गुरु) के चरणों में लीन रहते हैं।

द्वैत भाव को दूर करके गुरसिख सतसंगति में रह कर अपने को गुरु के साथ ऐसे मानता है, मानो उसके बिना दूसरा कोई है ही नहीं। इसकी तुलना भी वे पतिव्रता स्त्री से ही करते हैं।

गुर सिक्ख संगत मिलाप को प्रताप जैसो
पतिव्रत एक टेक दुविधा निवारी है।[१२३]

अर्थात् पतिव्रता स्त्री के समान गुरसिख अपने को गुरु के तद्रूप करके सभी दुखों से मुक्त हो जाता है।

गुरमुख के समान मनमुख की उपमा वे कुलटा स्त्री से देते हैं। खोटा प्रेम और द्वैत भाव बिताने वाली स्त्री के समान मनमुख गुरु के लिए सूर्य और चन्द्रमा के लिए राहु-केतु है।

'जैसी नाइका से कुआर पात्र ही सपात्र भली,
आस प्यासी माता-पिता ऐके नाह देत है।
वैसी नाइका सै दीनता के दुहागनि भली,
पतित पावन प्रिआ पाई काइ लेत है।
जैसी नाइका से भलो बिरहा बियोग सोग,
लवन-सवन सोधे सरध सहेत है।
जैसी नाइका से मात गरभ में गली भली,
कपट सनेह दुबिधा ज्यों राहु केत है।'[१२४]

एक आदर्श कन्या जिस प्रकार अपने घर में लाड-प्यार से पाली गई होती है। जब वह ससुराल जाती है तो उत्तम नारी-सुलभ गुणों के कारण ही उसकी इज्जत होती है। अपने पतिव्रत धर्म का पालन करने के कारण ही वह उस घर की शोभा बनती है।

इसी प्रकार गुरमुख भी गुरु के घर में उत्तम मानवीय गुणों के कारण, मर्यादा व सदाचार के कारण, ही शोभा पाता है। भाई गुरदास लिखते हैं—

'नेहर कुआर कन्या लाडली कै मानी अति
ब्याहे ससुरार जाइ गुनन के मानी जै।'

और भी— 'नैहर कुटुम्ब तज व्याहे ससुरार जाइ
गुनन के कुल बधू बिरध कहावई।
पूरन पतिब्रता औ गुरजन सेवा भाइ
ग्रह में ग्रिहेसर सुजसु प्रगटावई।'

जिस प्रकार पति-कृपा से एक स्त्री अपने को धन्य मानती है, उसी प्रकार गुरमुख गुरु-कृपा से अपने को श्रेष्ठ मानता है। भाई गुरदासजी का लौकिक श्रृंगार पक्ष निम्न कविता में स्पष्ट झलकता है।

'प्रीतम की पुतरी में तनक तारिका स्याम,
तौका प्रतिबिम्ब तिल तिलक त्रिलोक को।
....
किंचत कटाछ क्रिया तिलकी अतुल शोभा
सुरस्वती कोट मान भंग ध्यान कोक को।'[१२६]

पति की एक प्रेमभरी नजर ने मुझे सिरोमणि बना दिया और मेरे गोरे मुँह पर एक तिल स्वतः ही बन गया, जिसे देखकर कामदेव, नदी और चकोर भी अनादर अनुभव करते हैं।

संयोग पक्ष के समान ही गुरदासजी का वियोग पक्ष भी प्रबल बन पड़ा है। जब भाई गुरदासजी प्रचारार्थ काशी चले गए, तो गुरुचरणों से दूर होने के कारण विरह उन्हें सताने लगा। तब उन्होंने कुछ ऐसे पदों की रचना की, जिनमें नायक-नायिका का विरह वर्णित है।

'सुपन चरित्र चित्र वानक वचित्र को
पावन पवित्र निज आज मेरे आए हैं।
....
चात्रिक शबद सुन असीयाँ उधर गई,
भाई जल मीन गति विरह जगाए हैं।'[१२७]

इतना ही नहीं, विरह सन्तप्त विरहिणी की दशा का चित्रण देखें—

'विरह वियोग रोग सेत रूप ह्वै
क्रितास टूक-टूक भए पाती लिखीऐ विदेस ते।
विरह आनि से सवानी भास क्रिसन ह्वै
विरहनी मेल लेख बिखम सन्देश ते।
विरह वियोग रंगि लेखनि की छाती फटी,
रुदन करत लिखे आतम अदेस के,
विरहीं उसासन प्रशासन दुखित गत,
विरहनी कैसे जीऐ विरह प्रवेश ते।'[१२८]

जायसी के समान भाई गुरदास का विरह वर्णन भी चरमोत्कर्ष पर पहुँचा हुआ है। भाई गुरदास की नायिका भी पथिकों के हाथ सन्देश भेजती है।

'बिरह वियोग रोग दुखत ह्वै बिरहनी,
कहित सन्देश पथकन पै उसास ते।
....
तुम तौ चतरदस विद्या के निधान प्रिआ,
त्रिआ ता छडावौ हाइ बिहां रिपु त्रास ते।'[१२९]

भाई गुरदास के आध्यात्मिक काव्य में भी 'संयोग और वियोग में सुखी-दुखी नायिकाएँ निश्चय ही अपार्थिव प्रेम से विचलित दिखाई गउ हैं। फिर भी यह तो कहा ही जा सकता है कि कवि ने प्रणय प्रवीणता को भक्ति के लिबास में पेश किया है।'[१३०]

भाई गुरदास के कवित्त-सवैयों में रीति-भक्ति की नैतिकता

भाई गुरुदास के कवित्त सवैयों में भले ही भक्ति-भावना का प्राधान्य है, तो भी रीतिकालीन काव्य के गुणों का अभाव नहीं है। उन्होंने रीति तत्त्वों का अध्यात्मीकरण किया है। रीति-काव्य की परिपाटी पर चलकर भी सहज ढंग से ही गुरुमुखी लिपि एवं ब्रजभाषा के समन्वय का अनूठा उदाहरण तो काव्य जगत में प्रस्तुत किया ही है, साथ ही साथ वे व्यक्ति और रीति के समायोजन से सिक्ख मत के सिद्धान्तों एवं गुरुमुख की मर्यादा को भी अपनी लेखनी के द्वारा प्रस्तुत करने में पूर्णतः सफल हुए हैं। इतना ही नहीं, वे दैनिक जीवन के व्यवहार और सदाचार से भी जुड़े हुए हैं। बल्कि यों कहना चाहिए कि दार्शनिक विचारों का आश्रय छोड़कर भाई साहब ने अपना विषय व्यक्त करने के लिए व्यावहारिक बातों की टेक ली है। इन व्यावहारिक बातों, दृष्टांतों और अलंकारों के द्वारा गुरु और गुरुसिक्ख का सम्बन्ध, गुरुमुख और गुरुसिक्ख का चरित्र, मनुष्य के सदाचारक गुणों की प्राप्ति और और महत्त्व, गुरु की महिमा, गुरुओं और भक्तों के जीवन की कुछ घटनाएँ वर्णित की हैं।'[१३१]

भाई गुरुदास पर रीतिकालीन साहित्य का पूरा प्रभाव है। हिन्दी-क्षेत्रों में प्रचार करते रहने के कारण भाई गुरदास हिन्दी-कवियों, विद्वानों और लेखकों के सम्पर्क में आए, जिसके परिणाम-स्वरूप उन पर हिन्दी की रीति-कविता और ब्रजभाषा साहित्य का प्रभाव पड़ा, जो उनके कवित्तों में स्पष्ट लक्षित होता है। रीति के नायिका-भेद, श्रृंगार आदि के अनेक उदाहरण भाई गुरुदास के कवित्तों में विद्यमान हैं। स्त्री-पुरुष के संबंधों द्वारा सिक्ख और गुरु के सम्बन्ध व प्रेम की परिपक्वता व सच्चे प्रेम को दिखाया गया है। डॉ. मनमोहन सहगल ने मेरे एक पत्र के उत्तर में लिखा है—

"भाई गुरुदास कृत कवित्त-सवैयों की केन्द्रीय संवेदना मधुरा-भावी भक्ति की है। दाम्पत्य-श्रृंगार उसका मूल-स्वर है, किन्तु वर्ण्य विषय गुरु की महिमा, नाम-स्मरण एवं भक्ति है। रीतिकाल का प्रभाव है।'[१३२] भक्ति में रीति तत्त्व आ जाने का अन्य

कारण तत्कालीन साहित्यिक धारा एवं ब्रजभाषा का होना है। ब्रजभाषा में ही अत्यधिक रीतिकालीन साहित्य रचा गया। गुरदास की भाषा शुद्ध ब्रज है, जिसमें अलंकार तथा सरस शृंगारपूर्ण भक्ति-भावना अतीव आकर्षक बन पड़ी है।'[१३३] जो भी हो, भाई गुरदास ने रीति और भक्ति के संयोजन से सामाजिक नैतिकता के मानदण्डों की स्थापना करके साहित्य में जो नया दृष्टिकोण दिया है, वह निश्चय ही सराहनीय है। रीति परिपाटी पर चलकर भी भक्ति के माध्यम से सिक्ख मत के गुरुमत सिद्धान्तों की व्याख्या करते हुए भाई गुरदास ने व्यावहारिक रूप से उन्हें समझने की सफल चेष्टा की है, क्योंकि नैतिकता का प्रथम गुण सदाचार है। सदाचार ही मनुष्य को अच्छे आचरण वाला और व्यवहारकुशल बनाता है। इसीलिए "भाई साहिब का वर्णन अत्यधिक व्यावहारिक है। इसका सम्बन्ध सदाचार से है तथा वाहिगुरु और आध्यात्मिक बातों से क्या इसका अर्थ यह नहीं कि भाई साहिब ने 'वाहिगुरु' के गुणों का वर्णन नहीं किया अथवा उसकी भक्ति की आवश्यकता नहीं बताई।'[१३४] क्योंकि उनका महान लक्ष्य तो धर्म का प्रचार तथा वाहिगुरु का नाम-स्मरण ही था। तो भी एक गुरुसिक्ख होने के नाते उन्होंने आचार, मर्यादा, नैतिकता को अधिक महत्ता दी। इन्होंने भक्ति के लिए इनको प्रारम्भिक एवं अनिवार्य शर्तें माना है। 'भाई गुरदास एक आस्तिक और आस्तिक भी भक्ति और श्रद्धापूर्ण, होते हुए आचार को धर्म का ही अंग मानते हैं। उन्होंने आचार के गुण प्रधानतः वर्णन किए हैं, जो भक्ति और श्रद्धा हेतु आवश्यक है।'[१३५]

साहित्य और नैतिकता का सम्बन्ध—साहित्य और नैतिकता का बड़ा निकट सम्बन्ध है, क्योंकि दोनों ही मानव समाज की वस्तु हैं। साहित्य और नैतिकता दोनों की आधार भूमि मानव-समाज है। साहित्य समाज का दर्पण होता है। नैतिकता समाज का स्वरूप निर्धारण करती है। साहित्यकार मेघ के समान समुद्र के खारे जल को वर्षा के रूप में देता है। नैतिकता मनुष्य को समाज के लिए आदर्श प्रस्तुत करने की सामग्री (गुण) प्रदान करती है। अतः साहित्य और नैतिकता दोनों मिलकर समाज के लिए कल्याणकारी सिद्ध हुए हैं। साहित्य नैतिकता का प्रचार एवं प्रसार करता है, तो नैतिकता सत्साहित्य के लिए पृष्ठभूमि तैयार करती है। वास्तव में देखा जाए तो एक अच्छा साहित्य भी नैतिक गुणों को पैदा करने में सहायक होता है। जिस प्रकार समाज का साहित्य पर प्रभाव पड़ता है, ठीक उसी प्रकार साहित्य का भी समाज पर प्रभाव पड़ता है। साहित्य का वास्तविक अभिप्राय ही समाज का कल्याण करना है। कहा भी है—

> **'काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।**
> **सद्यः परनिर्वृत्तये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे॥'**[१३६]

काव्य के प्रयोजन पर प्रकाश डालते हुए आचार्यवर मम्मट ने साहित्य अथवा काव्य का प्रयोजन व्यवहार, यश और धन प्राप्ति के साथ-साथ 'सद्यः परनिर्वृत्तये' और 'शिवेतरक्षतये' कहा है। अतः स्पष्ट है कि समाज-कल्याण हेतु जिस व्यवहार और

कल्याण-भावना की आवश्यकता होती है, साहित्य उसे प्रदान करता है। साहित्य उपदेश भी देता है, जो नैतिकता के लिए अनिवार्य भी है। मगर सीधा उपदेश भी खलता है। काव्यप्रकाशकार ने उसे स्पष्ट किया है कि साहित्य कान्ता की सम्मति के समान उपदेश देता है। जिस प्रकार कान्ता अपने मधुर हाव-भावों से रसभरे वचनों से प्रियतम को समझाती हुई लक्ष्योन्मुख करती है, उसी प्रकार काव्य भी आनन्द प्रदान करते हुए, उपदेश देता है। एक अन्य विद्वान विश्वनाथ ने अपनी पुस्तक 'साहित्य-दर्पण' में साहित्य का ध्येय बताते हुए लिखा है कि साहित्य का प्रयोजन है—

'चतुर्वर्गफलप्राप्तिः सुखादल्पधियामपि।'[१३७]

अर्थात् अल्पबुद्धि वालों को भी सुख से बिना, किसी विशेष परिश्रम के चतुर्वर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप फल की प्राप्ति काव्य के द्वारा हो सकती है। देखा जाए तो मानवीय आदर्शों एवं मर्यादाओं का प्रयोजन भी मानसिक सन्तुलन, सन्तोष व मोक्ष ही है।

भाई गुरदास की नैतिकता—भाई गुरदास की नैतिकता गुरमत-सिद्धान्तों पर आधारित है। गुरुनानक की विचारधारा को अग्रसरित करने वाले भाई गुरदास पूर्ण गुरसिक्ख थे। एक आदर्श शिष्य होने के नाते गुरु के आशय को भली-भाँति जानते थे। उन्होंने सिक्खधर्म की मर्यादा में रहना और सिक्खी का प्रचार करना अपना जीवनोद्देश्य मान लिया था। यही कारण था कि उन्होंने अपने प्रचार की नींव नैतिकता पर ही रखी। उनके काव्य में गुरमत सिद्धान्तों की मर्यादा और नैतिकता की चर्चा स्थान-स्थान पर हुई है। 'सिक्ख धर्म की अरदास में चढ़दी कला, सरबदा भला, मननीवा, मति उच्ची, देग तेग फतह आदि वाक्यांश इस मत की भाई चारक और नैतिक भावना को उजागर करते हैं। इसी प्रकार नाम जपो, किरत करो, पेढ छको, संगत और पंगत, दस-वधे आदि के आदेश सिक्ख भाईचारे की और आत्मिक उन्नति की भावना के प्रतीक हैं।'[१३८]

भाई गुरदास ने सिक्ख धर्म के प्रचार हेतु सिक्ख को मर्यादा में रहने, गुरमुख होने तथा मानव-कल्याण की भावना से अपने गुरु के हुकम को मानने पर विशेष बल दिया है। भाई गुरदासजी एक ऐसी संस्था के प्रतिनिधियों में से थे, जो अपने समय में एक महान कार्य में तत्परता के साथ लगी हुई थी। उस समय सामाजिक कर्म का प्रधान और सर्व प्रतिनिधि रूप धार्मिक था। जिस कारण इसके विचारों और सिद्धान्तों में आदर्शवाद का आ जाना आवश्यक था।[१३९] भाई गुरदासजी की नैतिकता व्यक्तिगत होते हुए भी सामाजिक है। भले ही उन्होंने मुख्य रूप से नैतिकता का पक्ष नहीं लिया, तो भी भक्ति के साथ मर्यादा का ध्यान रखने की अनिवार्यता ने इस नैतिकता का होना अनिवार्य कर दिया। दूसरे, भाई गुरदास स्वयं नीतियुक्त व्यक्ति थे। अतः काव्य में कवि के व्यक्तित्व की छाप के रूप में उनके काव्य में नैतिकता का आभास होना स्वाभाविक ही है। अतः ये आदर्शवादी सिद्धान्तों की व्याख्या करते समय भक्ति, रीति व

नीति—तीनों कोणों को छूते हैं। 'आदर्शवाद के घूंघट के नीचे सामाजिक अनुगामी कर्म का सुन्दर रूप भाई गुरदास की रचनाओं में भी कहीं-कहीं दिखाई पड़ता है। चाहे भाई साहिब के स्वभाव के अनुकूल अधिकतर आपकी रचना भक्तिभाव वाली आदर्शवादी है और इस पर साम्प्रदायिक रंग भी अधिक है।'[१४०]

अतः कह सकते हैं कि भाई गुरदास एक आदर्श गुरसिक्ख, प्रचारक, कुशल अनुभवी, गुरुभक्त, प्रेमी, उदार, परोपकारी व एक विद्वान नीतिज्ञ थे। उनकी नैतिकता कोरा आदर्शवाद न होकर निजी अनुभव व व्यवहार की ठोस नींव पर आधारित है। उनके ब्रजभाषा में रचित सवैये इस तथ्य की पुष्टि करते हैं।

सन्दर्भिका

१. संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, सम्पा० चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा (इलाहाबाद : रामनारायणलाल बेणीप्रसाद, १९७७), पृ० ६२४.

२. वृहद् हिन्दी कोश, सम्पा० कालिकाप्रसाद (वाराणसी : ज्ञानमण्डल लिमिटिड, संवत् २०३०), पृ० ६१२.

३. गुरु शब्द रत्नाकार, महानकोश (पंजाबी), सम्पा० कान्हसिंह (पटियाला : भाषा-विभाग पंजाब, १९७४), पृ० ७१६.

४. हिन्दी-शब्द-सागर (पंचम भाग), सम्पा० श्यामसुन्दरदास (वाराणसी : काशी नागरी प्रचारिणी सभा, १९६८), पृ० २७१०.

५. मानविकी पारिभाषिक कोश (दर्शन खण्ड), सम्पा० नगेन्द्र (दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, १९६६), पृ० ८०.

६. इन्साईक्लोपीडिया भाग १०, (न्यूयार्क : अमेरिकन कारपोरेशन, १९७२), पृ० ६१०.

७. इन्साईकलोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स, भाग-५, सम्पा० जेम्स होस्टिंग्ज (न्यूयार्क : टी एण्ड टी क्लेरक, १९६४), पृ० ४१४१.

८. इन्साईकलोपीडिया ऑफ फिलासफी भाग-३, सम्पा० पाल एडवर्डज (न्यूयार्क : दि मैकमिलन कम्पनी एण्ड द फ्री प्रैस, १९६७), पृ० ८१-८२.

९. हृदयनारायण मिश्र, नीति-शास्त्र की भूमिका (चण्डीगढ़ : हरियाणा हिन्दी ग्रन्थ अकादमी), पृ० ६९.

१०. गणपति राय, एथिक्स एण्ड सोशल फिलासफी (पंजाबी), (जालन्धर : राज बुक डिपो, सन् अनुपलब्ध), पृ० १५.

११. भीखनलाल आत्रेय, भारतीय नीति-शास्त्र (लखनऊ : हिन्दी-समिति सूचना विभाग, १९६४), पृ० १२.

१२. वही, पृ० १४.

१३. जगवीरसिंह, गुरुनानकवाणी विच नैतिकता (पटियाला : भाषा-विभाग पंजाब, १९७३), पृ० ३.

१४. गणपतिराय एथिक्स ऐण्ड सोशल फिलासफी (पंजाबी), (जालन्धर : राज बुक डिपो, सन् अनुपलब्ध), पृ० १.
१५. दि न्यू इन्साईक्लोपीडिया ब्रिटेनिका (भाग-६) (शिकागो बिलिजन बैन्टोन पब्लिशर्ज, १९७४), पृ० ९७६.
१६. हृदयनारायण मिश्र, नीति-शास्त्र की भूमिका (चण्डीगढ़ : हरियाणा हिन्दी-ग्रंथ-अकादमी, १९७६), पृ० १६३.
१७. भीखनलाल आत्रेय, भारतीय नीति-शास्त्र (लखनऊ : हिन्दी समिति, सूचना-विभाग, १९६४), पृ० १४.
१८. हृदयनारायण मिश्र, नीति शास्त्र की भूमिका (चण्डीगढ़ : हरियाणा हिन्दी ग्रंथ अकादमी, १९७६), पृ० १६३.
१९. हिन्दी-शब्द-सागर (पंचम भाग), सम्पा० श्यामसुन्दरदास, (वाराणसी : काशी नागरी प्रचारिणी सभा, १९६८), पृ० २७१०.
२०. वजीरसिंह, सिक्ख धर्म : नैतिक पख, सिक्ख फलसफे दी रूपरेखा, सम्पा० प्रीतमसिंह (अमृतसर : गु० ना० दे० वि० वि०, १९७५), पृ० २००.
२१. जगबीरसिंह, गुरुनानक वाणी विच नैतिकता दा संकल्प, (पटियाला : भाषा-विभाग पंजाब, १९७३), पृ० २०.
२२. गोविन्दचन्द्र पांडे, मूल्य मीमांसा (जयपुर : राजस्थान हिन्दी-ग्रन्थ-अकादमी, १९७३), पृ० १६७.
२३. जगबीरसिंह, गुरुनानक वाणी विच नैतिकता दा संकल्प (पटियाला : भाषा-विभाग पंजाब, १९७३), पृ० २५.
२४. के० एस० नारंग, हिस्ट्री आफ दि पंजाब (दिल्ली : यू० सी० कपूर एण्ड सन्ज १९६९), पृ० १६.
२५. आर० पी० त्रिपाठी, सम आसपैक्ट्स ऑफ मुस्लिम एडमिनिस्ट्रेशन (इलाहाबाद : सैन्ट्रल बुक डिपो, १९६६), पृ० १.
२६. राजदेवसिंह, सन्त-साहित्य की भूमिका (दिल्ली, आर्य बुक डिपो, १९७४), पृ० ६९.
२७. शम्भुनाथसिंह, हिन्दी-काव्य की सामाजिक भूमिका (वाराणसी : चौखम्बा, विद्या भवन, १९६६), पृ० ८५०.
२८. राजदेवसिंह, सन्त-साहित्य की भूमिका (दिल्ली : आर्य बुक डिपो, १९७४) पृ० ६८.
२९. मदनगोपाल गुप्त, मध्यकालीन हिन्दी-काव्य में भारतीय संस्कृति (दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, १९६८), पृ० १०१.
३०. एम० पी० श्रीवास्तव, सोसाइटी एण्ड कलचर इन मिडीविअल इण्डिया (इलाहाबाद : यूथ पब्लिकेशन, १९७५), पृ० ६.
३१. परशुराम चतुर्वेदी, भक्ति काल : पूर्वपीठिका, हिन्दी-साहित्य का इतिहास, सम्पा० नगेन्द्र (दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, १९७३), पृ० ८३.

३२. यू० एन० डे; दि मुगल गवर्नमैंट (नई दिल्ली : मुन्शीराम, मनोहरलाल १९७०), भूमिका।

३३. पी० एन० चोपड़ा, सोशल कण्डीशन दि मुलग इम्पायर (बम्बई : भारतीय विद्या भवन, १९७४), पृ० ७४१.

३४. वही, पृ० ७४३.

३५. एम० पी० श्रीवास्तव, सोसाइटी एण्ड कलचर इन मिडीविअल इंडिया (इलाहाबाद : चुघ पब्लिकेशन, १९७५), पृ० ६.

३६. पी० एन० चोपड़ा, सोशल कण्डीशन दि मुगल इम्पायर (बम्बई : भारतीय विद्या भवन, १९७४), पृ० ६९९.

३७. वही, पृ० ६९४.

३८. के० एस० नारंग, हिस्ट्री ऑफ दि पंजाब (दिल्ली : यू. सी. कपूर एण्ड सन्ज, १९६९), पृ० ३२.

३९. झारखण्डे चौबे, मध्ययुगीन भारतीय समाज एवं संस्कृति, (लखनऊ : उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, १९७९), पृ० ३७१.

४०. मनमोहन सहगल, गुरुग्रन्थ साहिब : एक सांस्कृतिक सर्वेक्षण, (पटियाला : भाषा-विभाग पंजाब, १९७१), पृ० ३४४.

४१. वही, पृ० ३४५.

४२. भाई गुरदास, कवित्त सवैये सटीक भाई गुरदास, सम्पा० गिआनी बिशनसिंह (अमृतसर : जवाहरसिंह, किरपालसिंह एण्ड को०, १९७६), पृ० २३२.

४३. मनमोहन सहगल, गुरुग्रन्थ साहिब, एक सांस्कृतिक सर्वेक्षण (पटियाला : भाषा-विभाग पंजाब, १९७१), पृ० ३४७.

४४. श्रीकृष्ण : श्री मद्भगवद्गीता (गोरखपुर : गीता प्रैस, १९५०), पृ० ८२.

४५. तारनसिंह, गुरबाणी दीयां व्याख्या प्रणालियाँ (पटियाला : पंजाबी यूनी०, १९८०), पृ० ४०.

४६. मनमोहन सहगल, गुरु ग्रन्थ साहिब; एक सांस्कृतिक सर्वेक्षण (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, १९७१), पृ० ३४४.

४७. सन्तसिंह सेखो, भाई गुरदास इक अधिअैन (लुधियाना : लाहौर बुक शॉप, १९७५), पृ० ६८?.

४८. कबीर (साखी), कबीर ग्रन्थावली, सम्पा० श्यामसुन्दरदास (वाराणसी : नागरी प्रचारिणी सभा, संवत्, २०२५), पृ० १.

४९. संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, सम्पा० चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा (इलाहाबाद : राम नारायणलाल बेनीप्रसाद, १९७७), पृ० ४०.

५०. रत्नसिंह जग्गी, गुरुनानक दी विचारधारा (दिल्ली : नवयुग प्रकाशन, १९६९) पृ० ३२४.

५१. गुरुग्रन्थ संकेत-कोश, प्यारासिंह पद्म (पटियाला : पंजाबी यूनी० १९७७), पृ० ५०.

५२. अर्जुनदेव (गुरु), सुखमनी साहिब (अमृतसर : खालसा ब्रदर्ज : सन् अनुपलब्ध), पृ० ४३४-४३५.
५३. गुरु ग्रन्थ विचार कोश, प्यारासिंह पद्म, (पटियाला : पंजाबी यूनी०, १९६९), पृ० ५८.
५४. भाई गुरदास, कवित्त सवैये सटीक भाई गुरदास, सम्पा० बिशनसिंह (अमृतसर : जवाहरसिंह किरपालसिंह एण्ड को०, १९७६), पृ० २.
५५. वही, पृ० १६.
५६. संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, सम्पा० चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा, (इलाहाबाद : रामनारायणलाल बेनीप्रसाद, १९७७), पृ० ११५८.
५७. गुरु शब्द रत्नाकर (महान कोश) सम्पा० कान्हसिंह (पटियाला : भाषा-विभाग पंजाब, १९७४), पृ० ११५८.
५८. गुरु ग्रन्थ विचार कोश, सम्पा० प्यारासिंह पद्म, (पटियाला : पंजाबी यूनी०, १९६९), पृ० ८६.
५९. वही, पृ० २९.
६०. भाई गुरदास, कवित्त सवैये सटीक भाई गुरदास, सम्पा० गिआनी बिशनसिंह (अमृतसर : जवाहरसिंह, किरपालसिंह एण्ड को०, १९७६), पृ० १०५.
६१. गुरु शब्द रत्नाकर (महान कोश), सम्पा० कान्हसिंह (पटियाला : भाषा-विभाग पंजाब, १९७४), पृ० ४१८.
६२. गुरु ग्रन्थ संकेत कोश, सम्पा० प्यारासिंह पद्म (पटियाला : पंजाबी यूनी०, १९७७), पृ० १४२.
६३. कालासिंह बेदी, गुरु नानक शब्द-रत्नाकर (पटियाला : भाषा-विभाग पंजाब, सन् अनुपलब्ध), पृ० १६०.
६४. रत्नसिंह जग्गी, गुरुनानक दी विचाराँ (दिल्ली : नवयुग प्रकाशन, १९६९), पृ० २१०.
६५. भाई गुरदास, कवित्त सवैये सटीक भाई गुरदास, सम्पा० गिआनी बिशनसिंह (अमृतसर : जवाहरसिंह किरपालसिंह एण्ड को०, १९७६), पृ० २१.
६६. वही, पृ० ९२.
६७. वही, पृ० ४२.
६८. वही, पृ० ४८.
६९. कालासिंह बेदी, गुरु शब्द-रत्नाकर (पटियाला : भाषा-विभाग पंजाब, सन् अनुपलब्ध), पृ० ३०४.
७०. गुरु ग्रन्थ संकेत कोश, सम्पा० प्यारासिंह पद्म, (पटियाला : पंजाबी यूनी०, १९७७), पृ० २७३.
७१. गुरु ग्रन्थ विचार कोश, सम्पा० प्यारासिंह पद्म (पटियाला : पंजाबी यूनी०, १९६९), पृ० ४४९.
७२. वही, पृ० ४५०.

७३. भाई गुरदास, कवित्त सवैये सटीक भाई गुरदास, सम्पा० गिआनी बिशनसिंह (अमृतसर : जवाहरसिंह किरपालसिंह एण्ड को०, १९७६), पृ० ७३.
७४. वही, पृ० ९३.
७५. वही, पृ० २९५.
७६. गुरु शब्द-रत्नाकार (महान कोश), सम्पा० कान्हसिंह (पटियाला : भाषा-विभाग, पंजाब, १९७४), पृ० १८६.
७७. कालासिंह बेदी, गुरुनानक शब्द रत्नाकार (पटियाला : भाषा-विभाग पजाब, सन् अनुपलब्ध), पृ० ५३.
७८. गुरु ग्रन्थ संकेत कोश, सम्पा० प्यारासिंह पद्म (पटियाला : पंजाबी यूनी०, १९७७), पृ० १४.
७९. गुरु ग्रन्थ विचार कोश, सम्पा० प्यारासिंह पद्म (पटियाला : पंजाबी यूनी०, १९६९), पृ० ५३.
८०. भाई गुरदास, कवित्त सवैये सटीक भाई गुरदास, सम्पा० गिआनी बिशनसिंह (अमृतसर : जवाहरसिंह किरपालसिंह एण्ड को०, १९७६), पृ० ९२.
८१. वही, पृ० १६९.
८२. गुरु ग्रन्थ संकेत कोश, प्यारासिंह पद्म (पटियाला : पंजाबी यूनी०, १९७७), पृ० १५.
८३. गुरु शब्द रत्नाकर (महान कोश), सम्पा० कान्हसिंह (पटियाला : भाषा-विभाग पंजाब, १९७४), पृ० १५१.
८४. गुरु ग्रन्थ विचार कोश, सम्पा० प्यारासिंह पद्म (पटियाला : पंजाबी, यूनी०, १९६९), पृ० २९.
८५. वही, पृ० ४४९.
८६. भाई गुरदास, कवित्त सवैये सटीक भाई गुरदास, सम्पा० गिआनी बिशनसिंह (अमृतसर : जवाहरसिंह किरपालसिंह एण्ड को०, १९७६).
८७. वही, पृ० २३९.
८८. अर्जुनदेव (गुरु), सुखमनी साहिब (अमृतसर : शि० गु० प्र० कमेटी, १९८१), पृ० ४२.
८९. गुरु ग्रन्थ विचार कोश, सम्पा० प्यारासिंह पद्म (पटियाला : पंजाबी यूनी०, १९६९), पृ० २६५.
९०. भाई गुरदास, कवित्त सवैये सटीक भाई गुरदास, सम्पा० गिआनी बिशनसिंह (अमृतसर : जवाहरसिंह किरपालसिंह एण्ड को०, १९७६), पृ० २४०.
९१. वही, पृ० ३२७.
९२. वही, पृ० २५९.
९३. गुरु ग्रन्थ विचार कोश, सम्पा० प्यारासिंह पद्म (पटियाला : पंजाबी यूनी०, १९६९), पृ० २०५.
९४. भाई गुरदास, कवित्त सवैये सटीक भाई गुरदास, सम्पा० गिआनी बिशनसिंह (अमृतसर : जवाहरसिंह किरपालसिंह एण्ड को०, १९७६), पृ० २२४.

९५. वही, पृ० २३६.
९६. गुरु ग्रन्थ विचार कोश, सम्पा० प्यारासिंह पद्म, (पटियाला : पंजाबी यूनी०, १९६९), पृ० ४४३.
९७. वही, पृ० ४४२.
९८. भाई गुरदास, कवित्त सवैये सटीक भाई गुरदास, सम्पा० गिआनी बिशनसिंह (अमृतसर : जवाहरसिंह किरपालसिंह एण्ड को०, १९७६), पृ० २०६.
९९. वही, पृ० २४१.
१००. वही, पृ० २४३.
१०१. गुरु शब्द रत्नाकर (महान कोश), सम्पा० कान्हसिंह (पटियाला : भाषा विभाग पंजाब, १९७४), पृ० ५७५.
१०२. गुरु ग्रन्थ संकेत कोश, सम्पा० प्यारासिंह पद्म (पटियाला : पंजाबी यूनी०, १९७७), पृ० १८९.
१०३. गुरु ग्रन्थ विचार कोश, सम्पा० प्यारासिंह पद्म (पटियाला : पंजाबी यूनी०, १९६९), पृ० २९०.
१०४. भाई गुरदास, कवित्त सवैये सटीक भाई गुरदास, सम्पा० गिआनी बिशनसिंह (अमृतसर : जवाहरसिंह किरपालसिंह एण्ड को०, १९७६), पृ० ८५.
१०५. वही, पृ० २०९.
१०६. कालासिंह बेदी, गुरुनानक शब्द रत्नाकर (पटियाला : भाषा-विभाग पंजाब, सन् अनुपलब्ध), पृ० २९०.
१०७. गुरु ग्रन्थ विचार कोश, सम्पा० प्यारासिंह पद्म (पटियाला : पंजाबी यूनी०, १९६९), पृ० ३९३.
१०८. वही, पृ० ३९३.
१०९. भाई गुरदास, कवित्त सवैये सटीक भाई गुरदास, सम्पा० गिआनी बिशनसिंह, (अमृतसर : जवाहरसिंह किरपालसिंह एण्ड को०, १९७६), पृ० २४१.
११०. वही; पृ० २२६.
१११. वही, पृ० २४८.
११२. गुरु ग्रन्थ विचार कोश, सम्पा० प्यारासिंह पद्म (पटियाला : पंजाबी यूनी०, १९६९), पृ० ३८९.
११३. भाई गुरदास, कवित्त सवैये सटीक भाई गुरदास, सम्पा० गिआनी बिशनसिंह (अमृतसर : जवाहरसिंह किरपालसिंह एण्ड को०, १९७६), पृ० ३०१.
११४. गुरु शब्द रत्नाकर (महान कोश), सम्पा० कान्हसिंह (पटियाला : भाषा-विभाग पंजाब, १९७४), पृ० ५९४.
११५. वही, पृ० ५९४
११६. गुरु ग्रन्थ संकेत-कोश, सम्पा० प्यारासिंह पद्म (पटियाला : पंजाबी यूनी०, १९७७), पृ० ३५.

११७. भाई गुरदास, कवित्त सवैये सटीक भाई गुरदास, सम्पा० गिआनी बिशनसिंह (अमृतसर : जवाहरसिंह किरपालसिंह एण्ड को०, १९७६), पृ० २४२.

११८. वही, पृ० २३२.

११९. वही, पृ० ५६.

१२०. वही, पृ० २५३.

१२१. मनमोहन सहगल, पंजाब का हिन्दी-साहित्य (पटियाला : लीना पब्लिशर्ज़, सन् अनुपलब्ध), पृ० ९.

१२२. भाई गुरदास, कवित्त सवैये सटीक भाई गुरदास, सम्पा० गिआनी बिशनसिंह, (अमृतसर : जवाहरसिंह, किरपालसिंह एण्ड को०, १९७६), पृ० २७१.

१२३. वही, पृ० २७०.

१२४. वही, पृ० २७१.

१२५. वही, पृ० ८६.

१२६. वही, पृ० १४३.

१२७. वही, पृ० १३८-१३९.

१२७. वही, पृ० १४१.

१२९. वही, पृ० १४०.

१३०. मनमोहन सहगल, पंजाब का हिन्दी-साहित्य (पटियाला : लीना पब्लिशर्ज़, सन् अनुपलब्ध), पृ० ९.

१३१. सन्तसिंह सेखों, भाई गुरदास इक अधिअैन (लुधियाना : लाहौर बुक शॉप, १९७५), पृ० १११.

१३२. मनमोहन सहगल का पत्र, दिनांक २४-६-८२, पटियाला।

१३३. मनमोहन सहगल, पंजाब का हिन्दी-साहित्य (पटियाला : लीना पब्लिशर्ज़, संवत् अनुपलब्ध), पृ० ९.

१३४. सन्तसिंह सेखों, भाई गुरदास इक अधिअैन (लुधियाना : लाहौर बुक शॉप, १९७५), पृ० १११.

१३५. वही, पृ० ६८.

१३६. मम्मट भट्ट, काव्य-प्रकाश (कालिकाता : कालिकाता यन्त्रे, ई० १८९७) पृ० ७-८.

१३७. विश्वनाथ, साहित्य-दर्पण (दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास, १९७७), पृ० ७.

१३८. जगबीरसिंह, सिक्खधर्म दा नैतिक पख, सिक्ख फलसफे दी रूपरेखा, सम्पा० प्रीतमसिंह (अमृतसर : गु० ना० दे० यूनी०, १९७५), पृ० १९५.

१३९. सन्तसिंह सेखों, भाई गुरदास इक अधिअैन (लुधियाना : लाहौर बुक शॉप, १९७५), पृ० ८४.

१४०. वही, पृ० ८४.

५ | भाई गुरदास के कवित्त-सवैयों का साहित्यिक मूल्यांकन

कवित्त, सवैया : परिभाषा

कवित्त और सवैया एक काव्य-रूप है। कविता की मुख्य पहचान उसकी लयात्मकता, उसकी गेयता तथा छन्द-प्रधानता है। यही गुण कविता को गद्य से पृथक् करता है। 'शब्दों की नियमित और लयमयी रचना को छन्द कहा जाता है······भारतीय काव्य-कला में वर्णों या मात्राओं की संख्या प्रधान है।'[1] कविता में आकर्षण होता है। इसीलिए भक्ति-काल के सभी भक्त कवियों, सन्तों तथा गुरुओं ने अपने उपदेश काव्यमयी भाषा में दिए हैं। भाई गुरदास (१६१०-१६९५) ने भी 'वारें' और 'कवित्त-सवैये' क्रमशः 'पऊडी' और घनाक्षरी (कवित्त) में रचकर गुरवाणी की सरल व्याख्या प्रस्तुत की।

'कवित्त' रीतिकाल का प्रधान छन्द रहा है, मगर इसका प्रयोग रीति काल से पूर्व भी मिलता है। 'कवित्त छन्द गणात्मक न होकर केवल वर्णनात्मक है। लघु-गुरु का कोई सुनिश्चित क्रम न होने से इसका विधान एक विशेष प्रकार के प्रकट के अनुकूल सिद्ध होता है, जिसमें मात्रिक छन्दों की आरोह-अवरोहमय गेयता के स्थान पर निर्झर की सी शृंखलित ध्वनि का अनुरणन प्रधान दिखाई देता है।'[2] 'कवित्त' छन्द एक मुक्तक छन्द होने के कारण कई रूपों में प्रचलित रहा है। रूप-भेद के अनुसार इस के कई नाम प्रचलित हुए हैं।' 'घनाक्षरी' के अर्थ में कवित्त शब्द का प्रयोग बहुत प्राचीन नहीं है। वीर काव्य में 'कवित्त' शब्द 'छप्पय' छन्द के लिए व्यवहृत होता था।'[3]

अब प्रश्न यह पैदा होता है कि भाई गुरदास ने अपनी इस हिन्दी-रचना के लिए कवित्त-सवैया छन्दों को ही क्यों चुना? इसका प्रमुख कारण यह है कि एक तो यह छन्द तत्कालीन कवि-समाज में प्रचलित छन्द था। दूसरे, यह व्रजभाषा के अत्यन्त अनुकूल है। भाई गुरदास का काव्य व्यावहारिक ज्ञान एवं अनुभूति का काव्य है, जिसके लिए एक मुक्तक एवं विशालहृदयी छन्द की आवश्यकता है। उन्होंने कविता लिखने के लिए कविता नहीं लिखी।' उनका उद्देश्य खोज और मन्थन था, वाद-विवाद और संघर्ष नहीं। मंथन में समन्वित भाव-लहरें होती हैं, इसलिए उसका क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत और उदार होता है। भाई गुरदास की रचनाओं के विषय, शब्द-भण्डार और बिम्ब विधान विशाल हैं।'[4] कवित्त के समान ही भाई गुरदास ने 'सवैया' छन्द का भी प्रयोग किया है। सवैया वास्तव में दोहा का ही विकसित रूप है। प्राचीन काव्य अथवा लक्षण-ग्रन्थों में इसका उल्लेख नहीं मिलता। 'प्राकृत-पैंगेलम्' में भी सवैया जैसे किसी छन्द का लक्षण नहीं दिया है। केवल 'दुर्मिल' तथा 'किरीट' नामक दो छन्दों का वर्णन वृत्तों के प्रसंग में किया

गया है ।’[५] ब्रजभाषा के एक पिंगल शास्त्री हरिराम कृत ‘छन्द रत्नावली’ में ‘दुर्मिल’ और ‘किरीट’ के अतिरिक्त ‘इन्दव’, ‘झूलना’ और ‘अमल नामक तीन और वृत्त दिए गए हैं। जो स्वरूप-विस्तार और गणात्मक प्रकृति से सवैया के भाई दिखाई देते हैं।’[६] सवैया छंद में साधारणतया २२ से २६ तक वर्ण होते हैं। सवैया छन्द में भी कोई निश्चित नियम न होने से इसके रूप-भेद से कई नाम प्रचलित हैं। यथा मदिरा, मत्तगयंद किरीट, दुर्मिल, सुन्दरी, लवंगलता आदि इसके प्रसिद्ध भेद हैं। भाई गुरदास ने ‘कवित्त’ के समान विशेषताओं के कारण ही इसे भी अपनी कविता में विशेष स्थान दिया है। मगर ‘सवैया छन्द का प्रयोग कम ही है। वर्णनात्मकता तथा गीति तत्त्व दोनों का किसी मुक्तक छन्द में यदि श्रेष्ठतम समावेश हुआ है तो वह इसी छन्द में मिलता है।’[७] भाई गुरदास के काव्य में उक्त दोनों गुण विद्यमान हैं। हिन्दी कविता के रूप में ब्रजभाषा में रचित कवित्त-सवैयों में इनके भाव मूलक नैतिक गुणों एवं सदाचार के सामान्य नियमों को गुरमत के अनुकूल भावाभिव्यक्ति हुई है। ‘भाई गुरदास की विचार शक्ति अत्यन्त प्रबल, व्यंग्यशील, स्पष्ट, न्यायशील तथा चिरंजीवी है। जिस करके इनकी कविता का मूल्य अधिक है।’[८] इन्हीं विशेषताओं को संजोए हुए भाई गुरदास के कवित्त-सवैये उनकी कविता को सर्वश्रेष्ठ घोषित करते हैं। उदाहरण स्वरूप—

कवित्त

‘जैसे कुआर कन्या मिल खेलत अनेक सखी
सगल को एकै दिन होत न विवाह जी,
जैसे बीर खेत बिखे जात है सुभट जेते,
सबै न मरत तेते सतत सनाह जी,
बावन सजीव जैसे बिबिध बनासपती
एकै बेर चन्दन करत न ताहि जी,
तैसे गुर चरन सरन जात है जगत
जीवन मुक्ति पद चाहत है जाहि जी।’[९]

सवैया

वेद बिरंच विचार न पावत,
चक्रत शेख शिवाद भए हैं।
योग जगादि अराधत नारद,
सारद शक्र सनात नए हैं
आदि अनादि अगाध अगोचर
नाम निरंजन जाप जए हैं,
श्री गुरु देव समेव सु संगत,
पैरी पए भाई पैरी पए हैं।’[१०] (सवैया ५५४)

कवित्त तथा सवैया के अतिरिक्त भाई गुरदास ने ब्रजभाषा के दोहा, सोरठा झूलना, मोतिया आदि छन्दों का भी न्यूनाधिक मात्रा में प्रयोग किया है।

कवित्त-सवैया : परम्परा और विकास

भाई गुरदास (१६१०-१६९५) का काल लगभग उत्तर भक्तिकाल का समय है। उस समय ब्रजभाषा-साहित्य चरमोत्कर्ष पर था। साहित्य में रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त परिपाटी पर कविता लिखी जा रही थी। भक्तों, सन्तों व गुरुओं ने अपने धर्मप्रचारार्थ रीतिमुक्त कविता शैली को ही अपनाया, मगर रीतिकालीन प्रभाव से मुक्त न हो सके। भक्ति सम्बन्धी कविता श्रृंगार का पुट लेकर ही सामने आई। 'इधर छप्पय, दोहा, कवित्त और सवैया—ये आरम्भ से ही प्रकृतितः मुक्तक के अधिक अनुकूल थे।'[११] यही कारण है कि सभी श्रृंगारी एवं भक्ति सम्बन्धी रचनाएँ लगभग इन्हीं मुक्तक छन्दों में मिलती हैं। घनानन्द इन छन्दों के सिद्धहस्त कवि हैं। 'सवैया रीतिकाव्य का मधुरतम छन्द है, वृत्तात्मक गरिमा के अतिरिक्त इसके संगीत में कुछ ऐसी सुकुमारता मिलती है, जो संस्कृत के अन्य वृत्तों में लक्षित नहीं होती। गुरु को लघुवत् ग्रहण करने की स्वतंत्रता के कारण इसमें भाषा विशेष स्वाभाविकता के साथ प्रवहमान होती है।'[१२] सवैया के समान ही कवित्त भी स्वतंत्र विचारधारा को वहन करने वाला मुक्तक छन्द है। यह हिन्दी-भाषा का अपना छन्द है और रीतिकाल में ब्रजभाषा में रचित काव्य में इसका सर्वाधिक प्रयोग हुआ है और इसका विकास भी हिन्दी-भाषी क्षेत्र में हुआ।' रीतिकाल में 'कवित्त' का इतना प्रयोग हुआ कि एक प्रकार से इस छन्द की जितनी परिष्कृति सम्भव थी, वह हो गयी।'[१३] भाई गुरदास ने भी अपने समकालीन साहित्य का अनुसरण करते हुए ब्रजभाषा के अनुकूल 'कवित्त' और 'सवैया' छन्द का ही प्रयोग किया। भले ही उस समय हिन्दी में एक विशाल रूप में एक परम्परा या रीति के आधार पर हिन्दी के अनेक कवियों ने कवित्त-सवैया छन्दों में रचनाएँ की थीं और कर रहे थे। मगर भाई गुरदास 'वह प्रथम कवि हैं जिसने ब्रजभाषा में 'सवैये' और 'कवित्त' रचे। इस प्रकार साथ ही उन्होंने गुरुगोविन्दसिंह की ब्रज-रचना के लिए रास्ता तैयार किया।'[१४] इस प्रकार हिन्दी से पंजाबी की ओर यह परम्परा आगे बढ़ी।

भाई गुरदास की भाषा (कवित्त सवैयों के सन्दर्भ में)

भाई गुरदास की दो रचनाएँ प्रसिद्ध हैं, जिन्हें काव्य-जगत में सम्माननीय स्थान प्राप्त है। वाराँ (भाई गुरदास ज्ञानरत्नावली) पंजाबी भाषा में है और कवित्त-सवैये ब्रज भाषा में। लिपि गुरमुखी है। भाई गुरदास ने भले ही कविता कविता के लिए नहीं रची। तो भी उनकी कविता काव्य-कला की कसौटी पर खरी उतरती है। उनकी काव्य-रचना में उनकी विद्वत्ता स्पष्ट झलकती है। वे भारतीय सभ्याचार और विचारों से पूरी तरह परिचित थे। भारतीय मिथक इतिहास और पुराणों की उन्हें गहरी जानकारी थी। उन्हें पंजाबी बोली, कहावतों, मुहावरों पर अनुपम नियन्त्रण था और भारतीय रहस्यवादी अलंकारों, रूपकों और उपमाओं की विस्तृत जानकारी थी।'[१५]

भाई गुरदास ने अपने कवित्तों में ब्रजभाषा के अनुरूप छन्द, अलंकार और शब्दावली का परिचय देकर ब्रजभाषा के विद्वानों के समान श्रेय प्राप्त किया है। रीतिकाल में आपने भक्ति और श्रृंगार के समन्वय को गुरमुखी लिपि में लिख कर पंजाबी और हिन्दी-साहित्य को एक नई दिशा प्रदान की है। भले ही उस समय उनके समान अनेक कवि और प्रचारक सिक्खधर्म का प्रचार कर रहे थे और हिन्दी की कवित्त-सवैया शैली का अत्यधिक प्रचलन था। मगर ऐसा कोई ही कवि होगा, जिसने दोनों काम एक साथ किए हों। भाई गुरुदास ही महान आत्मा थे।' भाई गुरदास ने पंजाबी और ब्रजभाषा दोनों में लिखा है। वह प्रथम पंजाबी कवि हैं जिसने ब्रजभाषा में सवैये और कवित्त रचे।'[१६] भले ही इसमें आप ने गुरमत के सिद्धान्तों की व्याख्या ही की है, तो भी दिनचर्या के उदाहरणों एवं सरल दैनिक मुहावरों-लोकोक्तियों द्वारा उसे समझाने का सफल प्रयत्न किया है। मथुरा, आगरा, काशी, बनारस आदि ब्रजभाषा-भाषी स्थानों पर प्रचार करने के कारण तथा विद्वानों के साथ शास्त्रार्थ करने के कारण आपकी ब्रजभाषा प्रौढ़ एवं परिमार्जित हो गई थी। वैसे भी अनुभूतिगत कविता के लिए इतनी जटिल भाषा की आवश्यकता नहीं होती। तो भी आपकी कविता आपकी संस्कृत प्रतिभा, विद्वत्ता को और अनुभूति को स्पष्ट अवश्य करती है। कवित्त सवैये आपकी संस्कृत और ब्रज की विद्वत्ता और वारें पंजाबी बोली की गहरी सूझ को प्रकट करते हैं।'[१७] भाई साहिब ने भाषा का अनुकरण नहीं किया, अपितु भाषा उनके अनुकूल रही। उन्होंने जिस शब्द का जहाँ जैसे चाहा प्रयोग किया। अपनी मातृभाषा पंजाबी होते हुए भी ब्रजभाषा के मातृभाषा होने का भ्रम पैदा कर दिया।' वे मथुरा, वृन्दावन, बुहरानपुर, दिल्ली आदि शहरों तक प्रचार करके अपने आगरा के डेरे में आ जाते थे। इस प्रकार ब्रजभाषा उनकी मातृभाषा का स्थान ले चुकी थी और संस्कृत ग्रन्थों का पठन-पाठन वे गुरुघर में ही करते आए थे। इसी कारण उनकी साहित्यिक बोली प्रौढ़ बनती गई।'[१८] लगता है कि भाई गुरदास ने पहले कवित्तों की रचना की होगी, क्योंकि इनकी प्रथम १० वारों पर भी ब्रजभाषा का बहुत प्रभाव है। शेष वारें ठेठ पंजाबी में है। पंजाबी कविता लिखने का अभ्यास उन्हें ब्रजभाषा के कवित्त रचने से पूर्व नहीं था, नहीं तो उनकी ब्रजभाषा में पंजाबी का बहुत ज्यादा आ जाना स्वाभाविक था। उनकी पंजाबी बोली तो दस-पंद्रह वारों की समाप्ति के बाद निखरती है।'[१९] यही कारण है कि उनके कवित्तों की भाषा उनके भावों को वहन करने में पूर्णतः समर्थ है। कवित्त छन्द स्वयं एक मुक्तक छन्द है और भावों, शब्दों, उपमाओं, अलंकारों की दृष्टि से ब्रजभाषा के अति अनुकूल है। एक व्याख्याकार के लिए ऐसा छन्द ही उपयोगी सिद्ध होता है। भाई गुरदास गुरवाणी के व्याख्याकार थे। उनकी कविता की भाषा का एक नमूना देखें। साध-संगत के बारे में भाई गुरदास लिखते हैं—

कवित्त

'सहज समाधि साध संगत सुवृत भूमि,
चितचिवत फल प्राप्त उधार हैं।

बजर कपाट खुले साध संगति में,
सवद सुरति लाभ रतन व्योहार है।
साध संगत ब्रह्म सथा गुरदेव सेव,
अलख अभेव परमारथ अचार हैं।
सफल सु खेत हेत बनत अमित लाभ,
सेवक सहाई बरदाई उपकार हैं।'[२०]

इसी प्रकार साध-संगत की व्याख्या करते हुए भाई गुरदास ने ईश्वर (वाहिगुरु) स्वरूप गुरुनानकदेव को ही साध-संगत में विद्यमान माना है।

सवैया

'वेद विरंच विचार न पावत,
चक्रत सेख शिवाद भए हैं।
जोग जगादि अराधत नारद,
सारद शक्र सनात नए हैं
आदि अनादि अगाथ अगोचर
नामनिरंजन जाप जए हैं
श्री गुरदेव समेव सुसंगत
पैरि पए भाई पैरि पए हैं।'[२१]

कवित्त-सवैयों के सन्दर्भ में कहा जा सकता है भाई गुरदास की भाषा शुद्ध ब्रज है, जिसमें अलंकार तथा सरस श्रृंगार पूर्ण भक्ति-भावना अतीव आकर्षक बन पड़ी है।'[२२] अतः भाई गुरदास ब्रजभाषा के कवि हैं।

भाई गुरदास के कवित्तों का आलोचनात्मक अध्ययन

विषयवस्तु—मूलतः भाई गुरदास सिक्ख धर्म के प्रचारक थे। वे गुरमत के श्रेष्ठ व्याख्याकार थे। इसके साथ ही वे भारतीय सभ्यता, संस्कृति के पुजारी, गुरघर के सेवक, विद्वान तथा सिक्ख धर्म के स्वामी-भक्त, धर्म परायण, गुरमुख थे। 'उनके ब्रजभाषा में रचे कवित्त-सवैये उनकी विद्वत्ता को उजागर करते हैं, परन्तु विषय उनका भी 'गुरमत' की व्याख्या ही है। अतः उनके विचारों का स्रोत गुरवाणी और भारतीय दर्शन, बोली का स्रोत पंजाबी बारें और संस्कृत, प्राकृत के कवित्त और सवैये हैं।'[२३] कवित्तों की विषय-वस्तु किसी विशेष निश्चित पक्ष की ओर नहीं है। मात्र विभिन्न उदाहरणों द्वारा ईश्वर को पाने एवं एक आदर्श सिक्ख होने या बनने की प्रेरणा है।' कवित्तों में पहले २४ कवित्त, मंगलाचरण के रूप में हैं, जिनमें प्रभु और प्रथम छः गुरुओं का मंगल-गान किया गया है। फिर २५ से ४० तक के कवित्तों में गुरु की महानता दिखाई गई है और गुरमति की महानता (शब्द सुरति) के विषय लिए गए हैं।'[२४] भाई गुरदास के कवित्त-सवैयों का विषय उनके द्वारा अपनाए गए गुरमत-सिद्धान्तों एवं प्रचारक के रूप में अपने अनुभवों की

अभिव्यक्ति है। 'प्रचारक के कर्त्तव्य को पूर्ण सुगमता से निभाने हेतु आपको गुरुजी के सन्देश पर आधारित अपनी मौलिक रचना करनी पड़ी। इस आवश्यकता ने भी आपकी प्रतिभा को चमकाया। सभी कवित्त सवैये इसी यत्न से पैदा हुए।'[२५] आपने गुरमुख, मनमुख, गुरु, सिक्ख, साध-संगत आदि की विस्तृत-व्याख्या प्रस्तुत की है। आपने सामान्य ढंग से ही सिक्खधर्म का प्रचार किया, कट्टरता नहीं दिखाई। आपने अपने सभी कवित्त अपने प्रचार कार्य के समय ही रचे। कविता में व्याख्या करना गद्य की अपेक्षा आकर्षक होता है। तभी भाई गुरदास ने तत्कालीन प्रचलित छन्द, कवित्त, सवैया, झूलना दोहा, सोरठा आदि का प्रयोग करके अपने प्रचार कार्य को श्रेयस्कर बनाया।' कवित्तों में सिक्ख-धर्म के सर्व-साँझे (सार्वजनिक) असूलों का ही विधान है। जैसे गुरु की आवश्यकता, लेकिन आम सिक्ख रहित या जत्थेबन्दी के विशेष नियमों पर बल नहीं दिया गया है।'[२६]

भाई गुरदास के कवित्त-सवैये गुरबाणी की सरल व्याख्या प्रस्तुत करने के कारण ही गुरु अर्जुनदेव जी द्वारा 'गुरबाणी की कुंजी' की संज्ञा से अभिहित हुए।

शैली

भाई गुरदास रीतिकाल और भक्तिकाल की काव्य-शैली का समन्वयात्मक रूप लेकर चलते हैं। 'उन्होंने काव्यशास्त्रीय पद्धति का अनुकरण करके भी सरल एवं स्पष्ट शैली में काव्य रचना की।' कवित्त-सवैयों की कविता आध्यात्मिक और सामाजिक दृष्टि से उच्च दर्जे की कविता है। आपकी शैली उस समय के विद्वान कवियों तुलसीदास, सूरदास, रसखान और अब्दुल रहीम खानखाना से निराली अपने आपकी-सी आप ही है।[२७] आपकी शैली किसी परिपाटी को आधार बनाकर नहीं है, अपितु स्वनिर्मित है। पंजाबी, हिन्दी (ब्रज), प्राकृत, फारसी, संस्कृत भाषाओं का चित्रण आपके कवित्त-सवैयों में विद्यमान है। भाव पक्ष की दृष्टि से भी आपके कवित्त विभिन्नता लिए हुए हैं। आप निस्सन्देह आशु कवि थे। 'गुरु साहिबान के दरबार में जब पंडितों से चर्चा होती थी, तो भाई साहिब गुरुजी के कहने पर उसी समय कवित्त बना दिया करते थे। भाई गुरदास प्रत्येक विषय को स्पष्ट करने के लिए कई-कई उदाहरण देते हैं।'[२८] भाई गुरदास जिस भी क्षेत्र में गये, वहाँ की स्थानीय बोली के शब्दों को अपनी रचना-भाषा में संकलित कर लिया। आपकी मूल भाषा ब्रज है, मगर उसमें अनेक अन्य तत्कालीन प्रचलित भाषाओं के शब्द विद्यमान हैं। आपके पास शब्दों का असीम भण्डार है।' भाईजी अपनी शब्दावली विषय और समयानुसार प्रयोग करते रहे हैं। उनके पास पर्यायवाची शब्दों का अनन्त भण्डार था। उन्होंने काफी सावधानी से इनका प्रयोग किया है।'[२९] इन कवित्त-सवैयों के लोकप्रिय न होने का कारण इनकी जटिल शैली एवं भाषा समस्या है। गुरमुखी में लिखित पंजाबी साहित्य में रुचि रखने वालों के लिए ब्रजभाषा जटिल है, ब्रजभाषा जानने वालों के लिए गुरमुखी। वास्तव में यह रचना समसामयिक लोगों के लिए इस दृष्टि से उपयोगी थी कि इसमें ब्रजभाषी क्षेत्र के लोगों के लिए गुरमत सिद्धान्तों की व्याख्या को जानना आसान था। 'कवित्त सवैये इतने प्रसिद्ध

और लोकप्रिय नहीं हो सके, जितनी वारें। इसका प्रमुख कारण भाषा का बन्धन है। ········पर चूँकि इनमें गुरमत सिद्धान्तों की तरह मर्यादा और भक्ति-भावना का प्रकटाव हुआ है, इसलिए जिज्ञासुओं, सिक्ख-साधकों और प्रचारकों के लिए इनका काफी महत्त्व है।'[30] भले ही भाई गुरुदास ने रीतिकालीन कला पक्ष को अपना-कर काव्य-रचना की, तो भी अपने स्वतन्त्र विचारों पर किसी किस्म का बन्धन नहीं लगने दिया। 'भाई गुरदास को हम अपने काल के सभ्याचार का कवि कह सकते हैं। वह सभ्याचार जो कुछ तो शताब्दियों ने सामाजिक परम्परा के रूप में पैदा किया था, कुछ प्राकृतिक जीवन की देन था। पर बहुत सीमा तक गुरुओं की विचारधारा की देन थी। भाई गुरदास ने इस संस्कृति को अपने अनुभव में बसा लिया और बाद में जब कविता लिखने बैठे, तो ऐसे लिखी जैसे न केवल पढ़ा हुआ, अपितु अनुभवी कोई महाकवि सहज स्वाभाविक बात कर रहा होता है।[31] कवित्त सवैयों की भाषा में गत्यात्मकता है, शब्दों की भरमार है। शब्द स्वतः अर्थों को स्पष्ट करते हैं। इससे भाई गुरदास का शब्द-भण्डार, शब्द-चयन एवं काव्य-रचना के कौशल की पुष्टि होती है।' 'भाई गुरदास ने पंजाबी और ब्रजभाषा दोनों में लिखा है। वह पहला पंजाबी कवि है जिसने ब्रज भाषा में सवैये और कवित्त रचे।'[32] आपकी इसी परिपाटी को आगे गुरु गोविन्दसिंहजी ने अपनाया और गुरमुखी लिपि में हिन्दी-साहित्य के भण्डार को समृद्ध किया।

छन्द

भाई गुरदास की रचना 'कवित्त-सवैयों' के नाम से ही स्पष्ट है कि यह रीति-कालीन प्रसिद्ध छन्द कवित्त में रची गई कविता है। सवैया भी तत्कालीन प्रसिद्ध छन्द है, मगर भाई गुरदास ने इसका प्रयोग कम ही किया है। भाई गुरदास ने कितने कवित्त सवैये लिखे हैं—यह तथ्य अभी तक अनिश्चित है। सन् १९४० ई० तक उनके नाम के अधीन केवल ५५६ कवित्त सवैये छपे मिलते थे। परन्तु सन् १९४० ई० में वीरसिंह ने ११९ कवित्त और ढूँढ़ कर 'कवित्त भाई गुरदास' दूसरा स्कन्ध, नाम के अधीन प्रथम बार प्रकाशित किए।'[33] अतः अब भाई गुरदास के कुल (५५६ + ११९) ६७५ कवित्त-सवैये मिलते हैं। मगर इनमें मात्र कवित्त और सवैया छन्द ही नहीं हैं, दूसरे छन्द भी हैं। "इनमें से पहले स्कन्ध के कवित्त-सवैयों में से निम्नलिखित ३० छन्द इस विवरण के अनुसार हैं—

दोहरा—८	सोरठे—८
छन्द —२	छप्पै —८
सवैये —३	झूलना—१।"[34]

इस प्रकार पहले ५५६ कवित्तों में से ३० निकाल लेने पर कुल ५२६ कवित्त-सवैये शेष रहते हैं। रतनसिंह जग्गी के अनुसार 'कुल कवित्त-सवैयों में ९५ प्रतिशत से अधिक कवित्त हैं। शेष में से आठ दोहरे, आठ सोरठे और आठ छन्द आदि हैं। सवैये तो केवल तीन ही हैं और वह भी केवल प्रथम स्कन्ध में। इसलिए इस संकलन का नाम कवित्त

देना ही उचित है।'[३५] जो भी हो इससे स्पष्ट है कि भाई गुरदास ने रीति परिपाटी पर चलकर अपने व्याख्यान छन्दोबद्ध भाषा में किए।' आपकी ब्रजभाषा की रचना अधिकतर कवित्तों में है। कवित्त का रूप ३१ वर्ण का है।'[३६] उदाहरण—

कवित्त

गुरसिख सन्धि मिले बीस इकईस ईस, (१६)
इतते उलंघ उत जाइ ठहिरावई, (१५)=३१
चरम द्रिशटि मूंद पेखै दिव द्रिशटि के,
जगमग जोति उनमनी सुघ पावई।
सुरति संकोचत ही बज्र के कपाट खोल,
नाद वाद परे अनहत लिव लावई।
वचन विसरजित अनरस रहित ह्वै =(१६)
निझर अपार धार अपिउ पीआवई।[३७] (१५)=३१

भाई गुरदास ने अपनी वाणी हेतु जिन छन्दों का चयन किया है। उनमें कवित्त प्रमुख है। इसका अन्य नाम घनाक्षरी भी है, क्योंकि मनहरण कवित्त और घनाक्षरी नाम एक ही छन्द के लिए प्रयुक्त होता है। घनाक्षरी में ३१ अक्षर होते हैं, १६, १५ पर यति होती है तथा अन्तिम वर्ण गुरु होता है।'[३८] इसे मुक्तक दण्डक की श्रेणी में रखा गया है। इनमें गण-व्यवस्था नियमित नहीं होती। भाई गुरदास ने अपनी कविता के लिए इस छन्द को इस लिए चुना होगा, क्योंकि कविता लिखना तो उनका ध्येय था नहीं। उन्होंने अपने प्रचार-कार्य को रोचक एवं सरल बनाने के लिए ही इस मुक्तक छन्द का चयन किया होगा।

कवित्त

'जैसे सर सरिता में सकल समुन्दर बड़ो, १७
मेर में सुमेर बड़ौ जगत बखान है॥ १५=३२
तरवर बिरवै जैसे चन्दन बिरख बड़ो, १६
धात में कनक अति उत्तम के मान है॥ १५=३१
पछिन में हंस म्रिग राजन में सारदूल, १७
रागन में सिरी पारस पारवान है। १५=३२
ग्यानन में ग्यान अर ध्यानन में ध्यान गुरु, १६
सकल धरम में ग्रिहसत प्रधान है॥[३९] १५=३१

उक्त छन्द को देखने से चलता है कि इसमें घनाक्षरी की सी विशेषता तो है, मगर प्रत्येक पाद में वर्णों की संख्या भिन्न है। इसका मूल कारण यह है कि वह छन्द मुक्तक दण्डक जाति का है। छब्बीस अक्षरों से अधिक अक्षर यदि किसी पद्य के एक पाद में हों, तो उसे दण्डक कहते हैं। यह दण्डक संज्ञा इसलिए है कि इन पद्यों को यदि लिखा जाए तो लम्बे दण्ड के समान दिखते हैं।' 'मुक्तक से अभिप्राय है कि इनमें रीति-

कालीन कवियों के समान गण, मात्रा आदि का ध्यान नही रखना पड़ता। कोई बन्धन नहीं होता। विचारों को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने में बाधा नहीं आती। 'इन में गण व्यवस्था नियमित नहीं होती, केवल कहीं-कहीं गुरु-लघु का नियम होता है। २६ से अधिक अक्षर तो होंगे ही।'[४१]

भाई गुरदास के कवित्तों में कई-कई पादों में विभिन्न अक्षर-संख्या मिलती है, अन्त में गुरु मिलता है, १५ या १६ पर यति मिलती है। कुछ में अक्षर संख्या ३१ के स्थान पर ३२ भी हो जाती है। यथा प्रस्तुत कवित्त के प्रथम और तीसरे पाद की अक्षर-संख्या ३२ है, दूसरे और चौथे पाद की अक्षर संख्या ३१ है।

इस प्रकार भाई गुरदास (घनाक्षरी) कवित्त को अपना कर भी पूर्णतः उसके बन्धन में नहीं बँधे। उन्होंने भावाभिव्यक्ति पर ही अधिक बल दिया है।

सोरठा

'सम तेरह, विषमेश, दोहा उल्टा सोरठा।'

सोरठा छन्द के विषम (१, ३) पाद में ग्यारह-ग्यारह मात्राएँ और सम (२, ४) में तेरह-तेरह मात्राएँ होती हैं। ग्यारह पर यति होती है। ध्यानपूर्वक देखने से पता चलता है कि सोरठा दोहा का ही उलटा रूप है। लक्षण से भी स्पष्ट ही है। भाई गुरदास ने मंगलाचरण में एक ही पद को सोरठा और दोहा दोनों रूपों में लिखा है। यह अर्धसम मात्रिक छन्द है। उदाहरण—

'आदि पुरख आदेश, ओनम श्री सतगुर चरण। = २४ **मात्राएँ**
घट घट का परवेस, एक अनेक विवेक ससि।।'[४३] = २४

भाई गुरदास के उक्त सोरठा को देखने से तथा निम्न दोहे को पढ़ने से यह बात पूर्णतः स्पष्ट हो जाती है।

'ओनम स्री सतगुरु चरण, आदि पुरख आदेश।
एक अनेक विवेक ससि, घट घट का परवेस।।'[४४]

अब प्रश्न यह पैदा होता है कि इस पुनरावृत्ति की क्या आवश्यकता थी? इसका उत्तर यह है कि दोहा वैसे भी सोरठा की अपेक्षा पढ़ने में सरल, सरस, रोचक और आसान लगता है। उसमें लयात्मकता और गति बनी रहती है। दूसरे, इससे भाई गुरदास की विद्वत्ता और प्रतिभा का अनुमान लगाया जा सकता है।

दोहिरा (दोहा)

'तेरह विषम, न जादि है, समशिव दोहा लान्त।'

'दोहा' के विषम पादों (१, ३) में १३ मात्राएँ होती हैं और आदि में जगण नहीं होना चाहिए। सम (२, ४) पादों में ११ मात्राएँ होती हैं तथा अन्त में लघु होना आवश्यवक है।'[४५] दोहा छन्द भक्ति और रीति दोनों प्रकार के साहित्य का अत्यन्त लोकप्रिय छन्द है। भाई गुरदास ने अपनी रचना के आदि में मंगलाचरण के पदों में इसे अपनाया है। यह अर्ध-सम मात्रिक छन्द है। उदाहरण—

'अगमु अपार अनन्त गुरु, अबिगत अलख अभेद ।। =२४ मात्राए
पारब्रह्म पूरन ब्रह्म, सतगुरु नानक देव ।।[४६] =२४ मात्राएँ

भाई गुरदास ने उक्त दोहों का वही रूप लिया है, जो तत्समय में प्रचलित था। काव्यशास्त्रीय दृष्टि से ये कसौटी पर खरे उतरते हैं। लक्षण की दृष्टि से इसके विषम (१, ३) पादों में जगण को छोड़कर कोई भी अन्य गण हो सकता है। यह छन्द बोलने में भी अत्यन्त मधुर है और आकर्षक है। इसकी लय स्वतः ही निकल आती है। सम्भव है भाई गुरदास प्रचारक होने के नाते इसे भी गाते रहे होंगे।

छन्द

भाई गुरदास ने अपनी रचना कवित्त-सवैयों में सोरठा और दोहा के समान ही मंगलाचरण के रूप में आदि में ही आठ छन्दों की रचना भी की है। पहले सोरठा है, फिर दोहा है, फिर उसी के रूप में २४ मात्राओं का एक छन्द रचा है। इसे उन्होंने कोई नाम न देकर छन्द ही लिखा है। वैसे तो यह साधारण दण्डक श्रेणी का ही छन्द है। इसमें यति और लघु-गुरु का नियमित रूप नहीं मिलता।

'नाम दोइ प्रभु एक टेक गुरमुखि ठहराई। =२४ मात्राएँ
आदि भए गुरु नाम दुतीअ गोबिन्द बड़ाई ।। =२४ मात्राएँ
हरि गुर हरि गोविन्द रचन रच थाप उथापन। =२४ मात्राएँ
पूरन ब्रह्म विवेक प्रगट हुई आपा आपन ।।[४७] =२४ मात्राएँ

सम्भवतया यह भाई गुरदास का मौलिक छन्द हो अथवा तत्कालीन साहित्य, समाज या काव्य-शास्त्रीय परम्परा का कोई अन्य प्रचलित छन्द हो। इतना अवश्य है कि यह दोहा और सोरठा का काव्यानुवाद अत्यन्त स्पष्ट भाषा में करता है।

सवैया (समान)

सवैया को 'समान' छन्द भी कहते हैं। 'समान छन्द में जिसे सवैया भी कहते हैं, ३२ मात्राएँ, १६, १६ पर यति और अन्त में मगण होता है।......कई आचार्य 'अन्त में मगण हो' इस नियम को आवश्यक नहीं मानते।[४८] सवैया के कई रूप प्रचलित हैं। उनकी अक्षर-संख्या भी विभिन्न है। इसमें भी कवित्त के समान गण निश्चित नहीं होते। 'सवैया' की पहचान लक्षण के आधार पर आदि और अन्त देखकर की जाती है। उदाहरण—

खग म्रिग मीन पतंग चराचर, १४
जोनि अनेक बिखै भ्रम आइयो। ११=२५
सुन सुन थाह रसातल भूतल, १३
देव पुरी पति लौं बहु धाइयो। १२=२५

जोग हूँ भोग दुखाइ सुखदायक, १३
धरम अधरम सुकरम कमाइयो। १५=२८
हार पर्‌यो सरनागति आइ, १२
गुरु मुख देख गुरु सुख पाइयो ॥[४९] १३=२५

भाई गुरदास के उक्त 'सवैया' में वर्ण संख्या २५ है। तीसरे पाद में भिन्न है। प्रत्येक पाद के अन्त में मगण का नियम भी लागू नहीं होता। अतः स्पष्ट है कि सवैया के अनेक भेद हो सकते हैं। मगर यह छन्द मुक्तक दण्डक न होकर साधारण दण्डक ही हो सकता है। साधारण दण्डक में १६ तक अक्षर होते हैं। भाई गुरदास के उक्त छन्द(सवैया) में २५ वर्ण हैं। अतः उनका यह छन्द सवैया ही है। उनके सवैयों की वर्ण-संख्या निश्चित नहीं है। निम्नलिखित दोनों सवैयों की वर्ण-संख्या पूर्वोक्त सवैये से भिन्न है।

"जो गरबे बहु बूंद चितंतरि, =२४ अक्षर
मनमुख सिध सोभा नहीं पावे।
तूं करता हम कीए तिहारे जी,
तो पहि बोलन क्यों बन आवे।"[५०] =२४ अक्षर

इस सवैया के प्रत्येक पाद में २४ अक्षर हैं। और देखें—

'तोसो न नाथ, अनाथ न मोसर,
तोसो न दानि, न मोसो भिखारी।=२३ अक्षर
मोरे है औगन, तू गुन सागर,
जात रसातल ओट तिहारी ॥'[५१] =२३ अक्षर

इस सवैया के प्रत्येक पाद में २३ वर्ण हैं।

झूलना छन्द

झूलना छन्द देखने में मुक्तक दण्डकों की जाति में 'सवैया' जैसा ही लगता है। ब्रजभाषा के पिंगल ग्रन्थों में कदाचित् सर्व प्राचीन ग्रन्थ हरिराम कृत छन्द रत्नावली है। ...इसमें वृत्तों का विचार करते हुए 'दुर्मिल' और 'किरीट' के अतिरिक्त इन्दव, झूलना और अमलात नामक तीन और वृत्त दिए गए हैं, जो स्वरूप-विस्तार और गणात्मक प्रकृति से सवैया के भेद दिखाई देते हैं।'[५२] भाई गुरदास के झूलना छन्द का स्वरूप देखें—

सिम्रित पुरान कोटान बखान बहु, १४
भागवत वेद बिआकरण गीता ॥ १३=२७
सेस भरजेस अखलेश सुर महेस मुनि,
जगत अरु भगत सुर नर अतीता ॥ ३२
ग्यान अरु ध्यान उनमान उनमन उकत,
राग नादि द्विज सुर मति नीता ॥

अरध लग मात्र गुर सबद अखर मेक, =१७
अगम अति अगम अगाध भीता ॥'[१५३] =१६

भाई गुरुदास की सम्पूर्ण रचना में एक ही भूलना छन्द उपलब्ध होता है।

अलंकार

'तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृतिः पुनः क्वापि।'

अर्थात् 'दोषरहित, गुणसहित अलंकारों से विभूषित शब्द और अर्थ को काव्य कहते हैं।'

अलंकार काव्य का महत्त्वपूर्ण अंग है। मानव काया के आभूषणों के समान ही अलंकाय काव्य की शोभा बढ़ाते हैं। पाठकों को इस भ्रम की निवृत्ति हो जानी चाहिए कि अलंकार काव्य की शोभा को बढ़ाते हैं, पैदा नहीं करते। साहित्य दर्पणकार ने कहा है—

शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्मा शोभातिशायिनः।
रसादीनुमकुर्वन्ति अलंकारास्तेंगदादिवत् ॥

अर्थात् शोभा को अतिशय करने वाले, रस भाव आदि के उपकारक, जो शब्द और अर्थ के अस्थिर धर्म हैं, वे अंगद (बाजूबन्द) आदि की तरह अलंकार कहाते हैं।'

भाई गुरदास ने भी अपनी काव्य-शोभा की वृद्धि हेतु अलंकारों का उपयोग किया है। उन्होंने काव्यशास्त्रीय सरल अलंकारों का ही प्रयोग किया है। 'भाई गुरदास के कवित्तों में उपमाओं की गहन और विस्तृत कल्पना है, जैसे 'कालिदास' में है, जैसे 'भवभूति' में है। परन्तु यह सारा बल गुरुभक्ति के लिए प्रयोग किया है। जैसे 'जैदेव' ने 'गीतगोविन्द' में कृष्ण की उपमा में सम्पूर्ण काव्य बल लगा दिया है।'[१५६] भाई गुरदास के सम्पूर्ण काव्य में अलंकारों की भरमार है। कभी-कभी तो वे अलंकारों की बौछार ही लगा देते हैं। यह सब उनकी पर्यटन-प्रवृत्ति और व्यावहारिक ज्ञान का ही प्रमाण है। सचमुच ही वे अलंकारों और विशेषकर दृष्टान्तों के बादशाह हैं। अलंकारों से एक ओर तो उनकी कल्पना शक्ति का अनुभव होता है और दूसरी ओर उनकी मौलिकता के भी दर्शन होते हैं।' उनके १०० से भी अधिक कवित्त ऐसे हैं, जिनमें दृष्टान्त भरे पड़े हैं। एक ही कवित्त में ५-६ दृष्टान्त मिल जाते हैं। यथा—

जैसे चकई मुदित पेख प्रतिबिम्ब निस,
सिंध प्रतिबिम्ब देख कूप में परत है।
जैसे काच मंदर में मानस अनन्द भई,
स्वान पेख आप भूष के मरत है।
जैसे रवि सुत जन रूप और धरम राय,
धरम अधरम के भाउ में करत है ॥
तैसे दुरमति-गुरमति के असाध साध,
आपा आप चीनत न चीनत परित है ॥'[१५८]

इसमें कवि ने गुरमुख और मनमुख के अन्तर को अनेक दृष्टान्तों द्वारा स्पष्ट किया है। भाई साहिब को गुरवाणी के भाव को स्पष्ट करना था। अतः उन्हें सरल से सरल अलंकारों का प्रयोग करने की आवश्यकता पड़ी। 'आपके कवित्तों और वारों में प्रयोग की गई उपमाओं से स्पष्ट है कि आपको भारतीय रहस्यवादी धार्मिक और साहित्यिक अलंकार-प्रणाली का गहरा ज्ञान था।'[५९] आपने अपनी काव्य-भाषा में दैनिक-जीवन में प्रयोग किए जाने वाले मुहावरों-कहावतों के माध्यम से ऐसे अलंकारों का प्रयोग किया है कि सम्पूर्ण अलंकार उनके काव्य का शृंगार बन जाते हैं।' भाई साहिब के पास सूझ, कल्पना की उड़ान, विद्वत्ता और साधारण परिचय पूर्ण है, इसीलिए आपकी रचना में अनुकूल, सुन्दर अलंकारों का प्रयोग स्वाभाविक ही हो जाना था।'[६०] आपने शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का खुलकर प्रयोग किया है। अनुप्रास अलंकार की बहुत बार आवृत्ति हुई है। उनके अलंकार-ज्ञान की पुष्टि उनके एक कवित्त से ही हो जाती है, जिसमें उन्होंने उपमान और उपमेय का वर्णन किया है। देखिए—

निजधर मेरो साध संगत नारद मुनि,

....

साध संग रंग रस भोग सुख सहज में,
साध संग सोभा अति उपमा औ 'रूप है।'[६१]

उक्त कवित्त में उपमान और उपमेय दोनों का साध-संगत में ही होना कहा है। इसमें अनुप्रास अलंकार भी है। इससे स्पष्ट है कि उन्हें शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का ज्ञान था।

शब्दालंकारों में यमक का उदाहरण देखें—

खग म्रिग मीन पतंग चराचर,

....

दार परिओं सरनागति आइ,
गुरमुख देख गुरु सुख पाइओं ॥[६२]

उक्त सवैया में भाई गुरुदास ने गुरु शब्द की आवृत्ति करके एक का अर्थ गुरु (सतगुरु) और दूसरे गुरु का अर्थ अधिक (बहुत) लिया है।

अर्थालंकारों के अन्तर्गत कारण के होते हुए भी अगर कार्य के न होने का वर्णन हो, तो वहाँ विशेषोक्ति अलंकार होता है। भाई गुरदास द्वारा इसका प्रयोग इस प्रकार किया गया है—

जाने जो अनूप रूप द्रिगन के देखिअत,
लोचन अछत अंधकारे नाहि पेखई ॥

इसमें भाई गुरदास ने कहा है कि हम नेत्रों से देखते हैं, मगर नेत्रों के रहते भी अन्धा क्यों कर देख नहीं पाता? यहाँ देखने का कारण आँखें रहने पर भी देखने का कार्य नहीं होता है। अतः विशेषोक्ति अलंकार है।

भाई गुरदासजी की रचना को पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि वे काव्यशास्त्रीय दृष्टि से रीतिकालीन आचार्य थे। उनकी रचना की विशेषता यह है कि उन्हें अनेक भार-

तीय भाषाओं की शब्दावली, छन्द, अलंकार सहज ही प्राप्त हो गए थे। उन्होंने अपने काव्य में पंजाबी और संस्कृत से लेकर फारसी, प्राकृत आदि भाषाओं के अलंकारों का भी लाभ उठाया है। 'पंजाबी में भी संस्कृत के समान अनेक प्रकार के अलंकार प्रचलित हैं। उनमें से भाई गुरदास ने अधिकतर उपमा और दृष्टान्त अलंकारों का प्रयोग किया है।'[६४] वैसे तो उन्होंने विषय और भाव के अनुकूल ही अलंकारों का प्रयोग किया है। पहले वे दैनिक जीवन के उदाहरणों द्वारा बात स्पष्ट करते हैं, फिर अपनी आध्यात्मिक बात कह देते हैं।' दृष्टान्त अलंकार उनका मनचाहा अलंकार है। भाई साहिब ने इसका प्रयोग बड़े मुक्त ढंग से किया है। इससे आपकी रचना में सरलता भी बहुत आ गई है।'[६५] इनके अतिरिक्त भाई गुरदास ने 'रूपक' का बड़े अच्छे ढंग से प्रयोग किया है। देखिए—

'मानसर हंस साध संगति परमहंस,
धर्म धुजा सु धरमसाला चलि आवई।'[६६]

इसमें साध-संगत को मानसरोवर के रूप में कहा गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'भाई गुरदास की ब्रजभाषा शुद्ध ब्रज है, जिसमें अलंकार, सरस शृंगार पूर्ण भक्ति-भावना अतीव आकर्षक बन पड़ी है।'[६७] उनका अलंकार-ज्ञान अत्यन्त विस्तृत है।

रस

कविता मानव-मन को आनन्द प्रदान करती है। वही आनन्द जो अलौकिक है और योगियों को समाधिस्थ होने पर उपलब्ध होता है। इसीलिए शायद साहित्य में इसे 'रस' की संज्ञा दी गई है। आचार्य विश्वनाथ ने कहा है—

'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।'[६८]

अर्थात् रसात्मक वाक्य को काव्य कहते हैं। इतना ही नहीं रस के बिना काव्य की महत्ता ही नहीं है। आगे श्लोक में विश्वनाथ ने इसे काव्य की आत्मा कहा है—

'काव्यस्य शब्दार्थौ शरीरम्, रसादिश्चात्मा, गुणाः शौर्यादिवत्, दोषाः काणत्वादिवत्, रीतयोवयवसंस्थानविशेषवत्, अलंकाराः कटककुण्डलादिवत्, इति।'[६९] अर्थात् शब्द और अर्थ काव्य के शरीर हैं और रसादिक आत्मा हैं। माधुर्य आदि गुण शौर्यादि की भाँति, श्रुतिकटुत्वादि दोष काणेपन की तरह, वैदर्भी आदि रीतियाँ अंग-रचना के सदृश और उपमादिक अलंकार कटक, कुण्डलादि के सदृश होते हैं।

अतः स्पष्ट है कि कविता में रस का होना अनिवार्य है। काव्य-भाषा में रस स्थायी भाव पर आधृत होता है। यह पैदा नहीं होता, इसकी निष्पत्ति होती है।

भाई गुरदास के काव्य में अधिकतर शृंगार, (संयोग और वियोग दोनों), करुण और शान्त रसों का अधिकतर प्रयोग मिलता है। और भक्ति को भी रस मान लिया जाए तो लगभग ६० प्रतिशत कवित्तों में भक्ति रस मिलता है। कभी-कभी तो उनके एक ही कवित्त में अनेक रसों का होना पाया जाता है।

करुण रस का एक उदाहरण देखें—

'तोसों न नाथ, अनाथ न मोसर,
तोसों न दानि, न मोसों भिखारी।
मोसों न दीन, दयाल न तोसर,
मोसों अग्यानी न तोसों विचारी।'[७०]

वियोग श्रृंगार का उदाहरण देखिए—

विरहु वियोग रोग लेखन की छाती फटी
रुदन करत लिख आतम अवेस ते।
विरह उसासन प्रगासन दुखित अति
विरहनी कैसे जिए विरहु प्रवेस ते।'[७१]

संयोग श्रृंगार का उदाहरण देखिए—

सुपन चरित्र चित्र बानक बन बचित्र
पावन पवित्र मित्र आज मेरे आए हैं।'[७२]

इस प्रकार कवित्त-सवैयों में रस वर्णन भी मिलता है।

भाई गुरदास सिक्खधर्म के मध्यकालीन सर्वोच्च भक्त कवियों में से एक हैं। आपने अपनी रचनाओं में सिक्ख मत के दार्शनिक सिद्धान्तों की विस्तारपूर्वक चर्चा की है। आपकी रचनाएँ दार्शनिक महत्त्व से तो महत्त्वपूर्ण हैं ही, उनका साहित्यिक महत्त्व भी कम नहीं है। प्रस्तुत अध्याय में साहित्यिक मूल्यांकन के लिए उनकी हिन्दी-रचना कवित्त-सवैयों का काव्याशास्त्रीय अध्ययन किया गया है। उनकी रचना छन्द, अलंकार, रस, भाषा आदि की दृष्टि से उनके अपने समकालीन हिन्दी के भक्त कवियों से किसी प्रकार भी कम नहीं हैं। भाई गुरदास ने काव्य-सौष्ठव हेतु अपनी रचना के भाव पक्ष और कला पक्ष दोनों का समुचित ध्यान रखा है। गुरमत के प्रचारक होने के नाते वे एक विद्वान्, व्याख्याता एवं इतिहासकार तो हैं ही। उक्त रचना के आधार पर निश्चयात्मक रूप से कहा जा सकता है कि वे एक श्रेष्ठ कवि भी थे।

सन्दर्भिका

१. लालसिंह, भाई गुरदास (पटियाला : भाषा-विभाग पंजाब, १९६९), पृ० १९४
२. जगदीश गुप्त, रीति-काव्य-संग्रह (इलाहाबाद : साहित्य-भवन प्रा० लि०, १९७०), पृ० १२२.
३. वही, पृ० १२१.
४. लालसिंह, भाई गुरदास (पटियाला : भाषा-विभाग-पंजाब, १९६९), पृ० १४९.
५. जगदीश गुप्त, रीति-काव्य-संग्रह (इलाहाबाद : साहित्य-भवन प्रा० लि०, १९७०), पृ० १२०.
६. वही, पृ० १२०.
७. वही, पृ० १२१.

८. लालसिंह, भाई गुरदास (पटियाला : भाषा-विभाग-पंजाब, १९६९), पृ० ७४.
९. भाई गुरदास, कबित्त सवैये सटीक भाई गुरदासजी, सम्पा० गिआनी बिशनसिंह (अमृतसर : जवाहरसिंह किरपालसिंह एण्ड को, १९७६), पृ० २५३.
१०. वही, पृ० ३२८.
११. सम्पा० नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास (दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाऊस १९७३), पृ० २९८.
१२. जगदीश गुप्त, रीतिकाव्य-संग्रह (इलाहाबाद : साहित्य-भवन प्रा० लि० १९७०) पृ० १२०.
१३. वही, पृ० १२३.
१४. सम्पा० किरपालसिंह कसेल, पंजाबी सहित दा इतिहास (पटियाला : भाषा-विभाग, पंजाब, १९७१) पृ० ५२०
१५. शेरसिंह, मध्यकालीन पंजाबी कविता, मध्यकालीन पंजाबी सहित दा इतिहास, सम्पा. लालसिंह (पटियाला : भाषा-विभाग पंजाब, १९७०), पृ० २६-२७.
१६. प्रीतमसिंह, वीर रसी साहित, पंजाबी साहित दा इतिहास, सम्पा० किरपालसिंह कसेल (पटियाला : भाषा-विभाग पंजाब, १९७१), पृ० ५२०.
१७. तारनसिंह, भाई गुरदास, पंजाबी यूनी० पंजाबी सहित दा इतिहास, सम्पा० सुरिन्दरसिंह कोहली (चण्डीगढ़ : पंजाब यूनी० : १९७३), पृ० ३४१.
१८. सीताराम बाहरी, भाई गुरदास दी बोली ते शैली, पंजाबी दुनिया, भाई गुरदास विशेषांक, सम्पा० लालसिंह (पटियाला : भाषा-विभाग, पंजाब, १९६८), पृ० १४९.
१९. वही, पृ० १६०.
२०. भाई गुरदास, कवित्त सवैये सटीक भाई गुरदास जी, सम्पा० गिआनी बिशनसिंह (अमृतसर : जवाहरसिंह किरपालसिंह एण्ड को०, १९७६), पृ० ९१.
२१. वही, पृ० ३२८.
२२. मनमोहन सहगल, पंजाब का हिन्दी-साहित्य (पटियाला : लीना पब्लिगर्ज, सन् अनुलब्ध), पृ० ९.
२३. शेरसिंह, मध्यकालीन पंजाबी कविता, मध्यकालीन पंजाबी साहित दा इतिहास सम्पा० लालसिंह (पटियाला : भाषा-विभाग पंजाब, १९७०), पृ० २७.
२४. तारनसिंह, भाई गुरदास, पंजाब यूनी० पंजाबी साहित दा इतिहास, सम्पा० सुरिन्दरसिंह कोहली (चण्डीगढ़ : पंजाब यूनी० १९७३), पृ० ३४९.
२५. वही, पृ० ३४१.
२६. वही, पृ० ३४३
२७. सरदूलसिंह, भाई गुरदास (पटियाला : भाषा-विभाग, पंजाब, १९६१), पृ० ८१.
२८. दलीपसिंह दीप, भाई गुरदास (पटियाला : भाषा-विभाग, पंजाब, १९८१), पृ० १९.

२९. सीताराम बाहरी, भाई गुरदास बोली ते शैली, पंजाबी दुनिया (भाई गुरदास विशेषांक), सम्पा० लालसिंह, (पटियाला : भाषा-विभाग, पंजाब, १९६८), पृ० १५८.
३०. रत्नसिंह जग्गी, भाई गुरदास जीवनी ते रचना (पटियाला : पंजाबी यूनी०, १९७४), पृ० ३३.
३१. पिआरासिंह भोगल, पंजाबी साहित दा इतिहास (जालन्धर : हिरदेजीत प्रकाशन, १९७१), पृ० १७३.
३२. प्रीतमसिंह, वीर रसी साहित, पंजाबी साहित दा इतिहास, सम्पा० किरपालसिंह कसेल (पटियाला : भाषा-विभाग, पंजाब, १९७१), पृ० ५२०.
३३. रत्नसिंह जग्गी, भाई गुरदास जीवनी ते रचना (पटियाला : भाषा-विभाग, पंजाब, १९७४), पृ० ३२.
३४. सरदूलसिंह, भाई गुरदास (पटियाला : भाषा-विभाग, पंजाब, १९६१), पृ० ८१.
३५. रत्नसिंह जग्गी, भाई गुरदास जीवनी ते रचना (पटियाला : पंजाबी यूनी०, १९७४), पृ० ३५.
३६. सरदूलसिंह, भाई गुरदास (पटियाला : भाषा-विभाग, पंजाब, १९६१), पृ० ८१.
३७. भाई गुरदास, कवित्त सवैये सटीक भाई गुरदास जी, सम्पा० गिआनी बिशनसिंह (अमृतसर : जवाहरसिंह किरपालसिंह एण्ड को०, १९७६), पृ० ११.
३८. परमानन्द शास्त्री, श्री पिंगल पीयूष (दिल्ली : ओरियन्टल बुक डिपो, १९५३), पृ० १३४-१३५.
३९. भाई गुरदास, कवित्त सवैये सटीक भाई गुरदासजी, सम्पा० गिआनी बिशनसिंह (अमृतसर : जवाहरसिंह, किरपालसिंह, एण्ड को० १९७६), पृ० २३१.
४०. परमानन्द शास्त्री, श्री पिंगल पीयूष (दिल्ली : ओरियन्टल बुक डिपो, १९५३), पृ० १३०.
४१. वही, पृ० १३०.
४२. वही, पृ० १९८.
४३. भाई गुरदास, कवित्त सवैये सटीक भाई गुरदास जी, सम्पा० गिआनी बिशनसिंह (अमृतसर : जवाहरसिंह किरपालसिंह एण्ड को०, १९७६), पृ० १.
४४. वही, पृ० १.
४५. परमानन्द शास्त्री, श्री पिंगल पीयूष (दिल्ली : ओरियण्टल बुक डिपो, १९५३), पृ० १९८.
४६. भाई गुरदास, कवित्त सवैये सटीक भाई गुरदासजी, सम्पा० गिआनी बिशनसिंह (अमृतसर : जवाहरसिंह किरपालसिंह एण्ड को०, १९७६), पृ० १.
४७. वही, पृ० ७.
४८. परमानन्द शास्त्री, श्री पिंगल पीयूष (दिल्ली : ओरियण्टल बुक डिपो, १९५३), पृ० १९०-१९१.

४९. भाई गुरदास, कवित्त सवैये सटीक भाई गुरदासजी, सम्पा० गिआनी बिशनसिंह (अमृतसर : जवाहरसिंह किरपालसिंह एण्ड को०, १९७६), पृ० २५६.
५०. वही, पृ० ३१३.
५१. वही, पृ० ३१३-३१४.
५२. जगदीश गुप्त, रीति-काव्य-संग्रह (इलाहाबाद : साहित्य-भवन, प्रा. लि. १९७०), पृ० १२०.
५३. भाई गुरदास, कवित्त सवैये सटीक भाई गुरदासजी, सम्पा० गिआनी बिशनसिंह (अमृतसर : जवाहरसिंह किरपालसिंह एण्ड को०, १९७६), पृ० ३२०.
५४. विश्वनाथ, साहित्य-दर्पण (दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास, १९७७), पृ० १२.
५५. वही, पृ० २७३.
५६. शेरसिंह, मध्यकालीन पंजाबी कविता, मधकालीन पंजाबी साहित्य, सम्पा० लालसिंह (पटियाला : भाषा-विभाग, पंजाब, १९७०), पृ० २७.
५७. रत्नसिंह जग्गी, भाई गुरदास जीवनी ते रचना (पटियाला : पंजाबी यूनी०, १९७४), पृ० १२५.
५८. भाई गुरदास, कवित्त सवैये सटीक भाई गुरदास जी, सम्पा० गिआनी बिशनसिंह (अमृतसर : जवाहरसिंह किरपालसिंह १९७६), पृ० १११.
५९, तारनसिंह, भाई गुरदास, पंजाबी यूनी० पंजाबी साहित दा इतिहास, सम्पा० सुरिन्दरसिंह कोहली (चण्डीगढ़ : पंजाब यूनीवर्सिटी, १९७३), पृ० ३४१.
६०. सरदूलसिंह, भाई गुरदास (पटियाला : भाषा-विभाग, पंजाब, १९६१), पृ० ६९-७०.
६१. भाई गुरदास, कवित्त सवैये सटीक भाई गुरदास जी, सम्पा० गिआनी बिशनसिंह (अमृतसर : जवाहरसिंह किरपालसिंह एण्ड को०, १९७६), पृ० १९३.
६२. वही, पृ० २५६.
६३. वही, पृ० २२०.
६४. स० स० अमोल, भाई गुरदास दे अलंकार, पंजाबी दुनिया (भाई गुरदास विशेषांक) सम्पा० लालसिंह (पटियाला : भाषा-विभाग, पंजाब, १९६८), पृ० २१४.
६५. प्यारासिंह पद्म, भाई गुरदास दी हिन्दी-रचना, पंजाबी दुनिया (भाई गुरदास विशेषांक) सम्पा० लालसिंह (पटियाला : भाषा-विभाग, पंजाब, १९६८), पृ० २२३.
६६. भाई गुरदास; कवित्त सवैये सटीक भाई गुरदास, सम्पा० गिआनी बिशनसिंह (अमृतसर : जवाहरसिंह, किरपालसिंह एण्ड को०, १९७६), पृ० २१३.
६७. मनमोहन सहगल, पंजाब का हिन्दी-साहित्य (पटियाला : लीना पब्लिशर्ज, संवत् अनुपलब्ध), पृ० ९.
६८. विश्वनाश, साहित्य-दर्पण (दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास, १९७७), पृ० १९.
६९. वही, पृ० १६.
७०. भाई गुरदास, कवित्त सवैये सटीक भाई गुरदासजी, सम्पा० गिआनी बिशनसिंह (अमृतसर : जवाहरसिंह किरपालसिंह एण्ड को०, १९७६), पृ० ३१३.
७१. वही, पृ० १४१.
७२. वही, पृ० १३८-१३९.

६ भाई गुरदास का हिन्दी-साहित्य को योगदान

भाई गुरुदास की रचनाओं ने कुछ ऐतिहासिक भविष्यवाणियों को रेखांकित किया है। भाई गुरुदास की सामाजिक-नैतिकता के मूल्य निश्चित रूप में ही गुरमत-व्याख्या के मूल्य हैं। भाई गुरुदास केवल गुरबाणी के व्याख्याता ही नहीं हैं, बल्कि गुरवाणी की व्याख्या-प्रणालियों के अग्रदूत भी हैं। 'आदि ग्रन्थ' की सम्पादन-कला में भाई गुरदास का विलक्षण योगदान है। 'आदिग्रन्थ' का निर्गुण-चरित्र भाई गुरदास की सूझ (प्रतिभा) का ही निष्कर्ष है। 'आदि ग्रन्थ' में कबीर, नामदेव, रविदास, फरीद, सूरदास, सदना, पीपा तथा प्रथम पंच सिक्ख गुरुओं, निर्गुण सन्तों और भक्तों की वाणी का संकलन है। भाई गुरदास ने एक ही ग्रन्थ में शेख फरीद से लेकर ६०० वर्षों की परम्परा को एक सूत्र में पिरो दिया। 'आदि ग्रन्थ' मात्र सिक्खधर्म का ही नहीं,दार्शनिक दृष्टि से सभी भारतीय धर्मों का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। यह हिन्दी की देन तो है ही, साथ ही भारतीय साहित्य की अमर कृति भी है। भाई गुरदास ने 'आदि ग्रंथ' का सम्पादन संपूर्ण करने के पश्चात् हिन्दी और पंजाबी में लिखना आरम्भ किया। 'वारें' ('ज्ञान रत्नावली' चरित्र) प्रधान है। इसमें गुरु की स्तुति और उनकी महत्ता को दर्शाया है। साथ ही युग-चित्रण भी किया है।

कवित्त-सवैयों की भाषा ब्रज है पहले इनकी संख्या ५५६ थी। अब ११९ और कवित्त मिल जाने पर कुल ६७५ हो गए हैं। भाई गुरदास की हिन्दी-साहित्य की महत्त्वपूर्ण देन है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि भाई गुरदास ने तत्कालीन प्रचलित साहित्यिक भाषा ब्रज को अपना कर भी अपनी मातृभाषा के प्रति मोह को बनाए रखा। 'कवित्त सवैये' की विषय वस्तु गुरसिक्ख की मर्यादा, सदाचार एवं नैतिकता से ओत-प्रोत है। भाई गुरदास ने अपनी रचना के माध्यम से गुरमत-सिद्धान्तों को अति सरल एवं स्पष्ट भाषा में वर्णित किया है। इसीलिए इनकी वाणी को 'गुरवाणी की कुंजी' कहा गया है।

भले ही भाई गुरदास के 'कवित्त-सवैये' की लिपि गुरमुखी है, तो भी भाषा ब्रज है। यही कारण है कि आज तक इस रचना का मूल्यांकन नहीं हो सका। अध्ययन करने पर बोध होता है कि सम्पूर्ण रचना मध्यकालीन नैतिकता को लेकर चलती है। इसमें वर्णित धार्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक मध्यकालीन नैतिकता का मूलाधार गुरमत-मर्यादा है।

दो भाषाओं की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से जो रीति और भक्ति की नवीन स्थापना की गई है, वह निस्संदेह अनुपम है। भाई गुरदास के भक्त कवि होते हुए भी उनकी कविता का शृंगारिक पक्ष प्रबल है। ब्रज भाषा के विद्वान होने के कारण ही इनकी भाषा शुद्ध ब्रज है। पंजाबी इनकी मातृभाषा रही थी। अतः 'वारें' पंजाबी में होने पर भी ब्रजभाषा के शब्दों से परिपूर्ण है। भाई गुरदास अपने समकालीन अन्य ब्रजभाषा के कवियों में से एक हैं। भाई गुरदास की ब्रजभाषा में कविता रचना का अन्य कारण यह भी है कि वे एक गुरसिक्ख थे और गुरमत के प्रमुख प्रचारक थे। वे अपने दर्शन को पंजाब अथवा पंजाबी भाषा-भाषी क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रखना चाहते थे। अतः उन्होंने तत्कालीन

प्रचलित ब्रजभाषा को ही माध्यम बनाया। भाई गुरदास ने ब्रज के महत्त्वपूर्ण छन्दों में ही अपनी कविता रची। ब्रज-साहित्य में कवित्त-सवैयों की एक विस्तृत परम्परा चली। यह परम्परा सूर से पूर्व और पश्चात् लगभग ३५० वर्ष तक रही। अगर भाई गुरदास की रचना का मूल्यांकन इस परम्परा के अन्तर्गत किया जाए, तो भाई गुरदास एक महत्त्व-पूर्ण कवि सिद्ध होंगे। मगर हमें हिन्दी के कवि के रूप में इनकी रचना का अध्ययन करना है। विषय मूल पाठ्य-पुस्तक पर आधारित होने के कारण उसका परम्परागत अध्ययन नहीं हो सकता।

भाई गुरदास ने अपनी रचना 'कवित्त-सवैयों' में इसलिए लिखी, क्योंकि यह एक 'मुक्तक' छन्द है। इसमें विचारों को स्वतन्त्रतापूर्वक दिया जा सकता है। मात्र तुकान्त की आवश्यकता है। छन्द की गति वर्णों के आधार पर होती है। 'घनाक्षरी' के छन्दों में कोई बन्धन नहीं है। इससे भाई गुरदास की विकसित कवि-प्रतिभा का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। वारों में इनका कवि-रूप इतना खुल कर सामने नहीं आया है। 'वारें' सिक्ख इतिहास का प्रस्तुतीकरण है, तो 'आदि ग्रन्थ' मात्र अन्य भक्त कवियों का संकलन एवं सम्पादन है। 'वारें' (ज्ञान रत्नावली) के अतिरिक्त उनकी महत्त्वपूर्ण रचना कवित्त-सवैये है।

भाई गुरदास ने एक प्रचारक के रूप में हिन्दी (ब्रजभाषाभाषी) क्षेत्रों का भ्रमण किया और कई वर्षों तक निरन्तर ब्रजभाषी लोगों के सम्पर्क में रहे। इसका प्रभाव उनकी प्रारम्भिक वारों पर भी देखा जा सकता है। ब्रजभाषा तत्कालीन साहित्य-समाज की लोकप्रिय भाषा थी। भाई गुरुदास भी ब्रजभाषा के समर्थक थे। इसी कारण उन्होंने अपनी रचना 'कवित्त-सवैये' के लिए ब्रजभाषा को ही अपनाया। इसके माध्यम से वे भारतीय परम्परा से जुड़े। उस समय ब्रज-साहित्य की एक अमीर परम्परा थी। वे सूर, तुलसी, मीरा आदि के समानान्तर लिखना चाहते थे। मातृभाषा पंजाबी होने के कारण उन्होंने ब्रजभाषा अपना कर भी लिपि गुरमुखी ही रखी।

भाई गुरदास रीति और भक्ति की सामान्य परम्परा को लेकर चले। उनके काव्य में शृंगारिकता तो है, परन्तु देव और पद्माकर जैसी नहीं। भक्ति-भावना से ओत-प्रोत शृंगार पक्ष लौकिक से अलौकिक हो गया है। उन्होंने कवित्त-सवैये की परम्परागत संकुचित अवधारणा को एक नई दिशा दी और इन मुक्तक छन्दों का स्वेच्छानुसार प्रयोग किया।

भाई गुरदास की वारों का अध्ययन और विश्लेषण तो अनेक विद्वानों ने किया है। मगर 'कवित्त-सवैये' का अध्ययन और मूल्यांकन करने का दु:साहस शायद ही किसी विद्वान ने किया हो। कुछेक विद्वानों ने फुटकल लेखों द्वारा इनके विषय में प्रकाश अवश्य डाला है। आज तक हिन्दी के विद्वानों को इस बात का एहसास ही नहीं हो पाया कि भाई गुरदास हिन्दी के कवि हैं। कारणवश पंजाबी के विद्वानों ने ही इनके काव्य का मूल्यांकन किया है। उनमें भी अधिकांशतः वारों का ही उल्लेख हुआ है। 'कवित्त-सवैये' का संकेत-मात्र है। प्रमुख रूप से स० सरदूलसिंह, प्यारासिंह पद्म, हरिभजनसिंह, रत्नसिंह 'जग्गी', मनमोहन सहगल, जय भगवान गोयल, दलीपसिंह 'दीप' तथा सीताराम 'बाहरी' प्रभृति विद्वानों ने अपनी रचनाओं में भाई गुरदास के 'कवित्त-

सवैयों' का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया है।

प्रथम हिन्दी साहित्येतिहास लेखक 'गार्साँ-द-तासी' ने अपने इतिहास में प्रथमतः भाई गुरदास के काव्य का उल्लेख करते हुए उन्हें गुरुनानक का उत्तराधिकारी कहा है और उनका नाम 'गुरदास बल्लभ' (भाई) लिखा है। वे लिखते हैं भाई 'गुरदास बल्लभ भाई' एक सिक्ख लेखक हैं, जिन्होंने नानक के धर्म पर सुन्दर कविताएँ रची हैं। इन कविताओं में से कुछ का अनुवाद 'मालकम् कृत' 'ऐसे आन दि सिक्ख', ५० तथा बाद के पृष्ठ और 'कनिंघम्' कृत 'हिस्ट्री आव दि सिक्ख' ५० तथा बाद के पृष्ठ और ३८६ तथा बाद के पृष्ठों में हैं।······इन कविताओं में भाई गुरदास को व्यास और मुहम्मद का उत्तराधिकारी बताया है और उन्हें संसार में पवित्रता और धार्मिकता स्थापित करने वाला एवं झगड़े तथा विरोध उत्पन्न करने वाले विभिन्न धर्मों और सम्प्रदायों, विशेषतः हिन्दू धर्म और इस्लाम, में धार्मिक एकता उत्पन्न करने वाला बताया है।'[१]

इसके बाद किसी भी इतिहासकार ने भाई गुरदास का वर्णन नहीं किया। विडम्बना यह रही कि हिन्दी साहित्येतिहास लिखते समय प्रान्तीय भाषाओं में रचित हिन्दी-साहित्य को सम्मिलित ही नहीं किया गया। परिणामस्वरूप भाई गुरदास को हिन्दी के विद्वान् के रूप में स्वीकार नहीं किया गया। भाई गुरदास के हिन्दी के विद्वान होने का सबल और पुष्ट प्रमाण यह है कि उन्होंने काशी के पण्डितों से संस्कृत में शास्त्रार्थ किया और वहीं उन्हें 'वाहिगुरु स्तोत्र' की रचना करके 'वाहिगुरु' शब्द का अर्थ बताया। 'वाहिगुरु स्तोत्र' संस्कृत भाषा में है।

मैंने भाई गुरदास के ब्रजभाषा में विरचित ५५६ कवित्त-सवैयों को ही अपने अध्ययन का विषय बनाया है। भाई वीरसिंहजी द्वारा सम्पादित 'दूसरा स्कन्ध' के ११९ कवित्तों का देवनागरी में लिप्यन्तरण परिशिष्ट में दे दिया गया है। इन्हें मिला कर कुल संख्या ६७५ हो जाती है। मैंने जिन ५५६ कवित्त-सवैयों को अपनी लेखनी का आधार बनाया है, उनका विषय भाई गुरदास की रचना का 'नैतिक पक्ष' है।

वस्तुतः भाई गुरदास मध्यकालीन निर्गुण सन्त-साहित्य-परम्परा के हिन्दी-कवि हैं। उन्हें पहचानने भर की देर है। उनकी रचना मध्यकालीन हिन्दी-शोध और सिक्ख दर्शन को धारण किए हुए हैं। उनके सम्पूर्ण काव्य में निर्गुण दर्शन सिक्ख दर्शन के रूप में आया है। लेकिन हिन्दी-साहित्येतिहास इसे अपनाने में संकोच करता रहा है। बाधक रही है गुरमुखी लिपि। हिन्दी-साहित्य में प्रवृत्तिगत समानता होते हुए भी प्रान्तीय भाषा में रचित साहित्य को सम्मिलित नहीं किया गया। ऐसे ही अनेक अन्य प्रान्तीय भाषाओं के साथ अन्याय हुआ। ऐसे साहित्य का योगदान तब तक महत्त्वपूर्ण नहीं माना जा सकता, जब तक इसे प्रवृत्ति की दृष्टि से निर्गुण सन्त-साहित्य के कवित्तों के समान स्थान नहीं दिया जाता।

दूसरा प्रश्न भाई गुरदास की रचना के कलात्मक पक्ष से जुड़ा हुआ है। मध्यकाल में 'कवित्त-सवैयों' की एक सुदीर्घ परम्परा रही है। 'मुक्तक छन्द होने के कारण यह प्रचार कार्य के अत्यन्त अनुकूल था। भाई गुरदास ने इस अपनाया। इसके अनेक अन्य रूपों, सवैया, रोला, सोरठा, दोहा और झूलना का स्वेच्छा से उपयोग किया। अतः कवित्त-सवैयों की परम्परा को लेकर चलने वाले कवियों के समान ही भाई गुरदास के

काव्य का अध्ययन किया जाना चाहिए।' कवित्त-सवैया में कविता रचने वाले कवियों से तुलनात्मक अध्ययन करके भाई गुरदास के द्वारा इस परम्परा और साहित्य को दिए गए योगदान को दृष्टि में रखकर हिन्दी-साहित्य में उनका स्थान निर्धारित करना चाहिए। ऐसा करने से ही उस महान सन्त, दार्शनिक और कवि से न्याय हो सकता है।

भाई गुरदास केवल हिन्दी के कवि नहीं थे, उन्हें सिन्धी, लहँदा फारसी, संस्कृत और पंजाबी का भी यथेष्ट ज्ञान था। उन्होंने अपनी वारों में अनेक ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है, जो दूसरी भाषाओं से लिए गए हैं। उनका ब्रजभाषा पर भी उतना ही अधिकार है, जितना पंजाबी पर। 'कवित्त सवैये' इसी बात की पुष्टि करते हैं।

कुछ विद्वानों के पत्र परिशिष्ट में दिए गए हैं उनमें भाई गुरदास के 'कवित्त-सवयों' की महत्ता को उद्घाटित करने वाले कुछ अंश इस प्रकार हैं। मनमोहन सहगल लिखते हैं—'भाई गुरदास कृत कवित्त-सवैयों की केन्द्रीय संवेदना मधुराभावी भक्ति की है।...कवित्त-सवैये बहुत समय तक अज्ञात रहे। ब्रजभाषा में हैं, पंजाबी में नहीं और मूल स्वर शृंगारिक सा दीखता है।'[२] वास्तव में भाई गुरदास की हिन्दी-रचना की यह अनूठी विशेषता है कि मूल संवेदना भक्ति-भावना की होते हुए भी वह शृंगारिकता से ओत-प्रोत है। शमशेरसिंह 'अशोक' लिखते हैं—'कवित्त-सवैये' पंजाब से बाहर उत्तर प्रदेश की काव्य-रचना होने के कारण तथा भाषा दूसरी ओर होने के कारण तथा कुछ पंजाबी मुहावरे से बाहर होने के कारण इतने लोकप्रिय नहीं हो सके। भाई गुरदास के कवित्त-सवैयों के अप्रचलित होने का सबसे बड़ा कारण यही है।'[३] प्रसिद्ध विद्वान् प्यारासिंह पद्म इसे एक जटिल रचना मानते हैं। वे ब्रजभाषा को सामान्य लोगों की समझ से बाहर मानते हैं और इसके काव्य पक्ष को कमजोर मानते हुए इसकी लोक-प्रियता का प्रमुख कारण मानते हैं। इसे हिन्दी-साहित्य तक न पहुँचा सकने को पंजाबी विद्वानों की कमजोरी मानते हुए वे लिखते हैं। 'यह हमारी कमजोरी है कि हम पंजाबी वाले अपना हिन्दी-साहित्य उन तक न पहुँचा सके। इसके बिना अध्ययन कैसे सम्भव था।'[४] रत्नसिंह जग्गी भी इसके लोकप्रिय न होने का प्रमुख कारण इसकी ब्रजभाषा को ही मानते हैं। इसके साथ ही वे इस रचना के प्रति उपेक्षाभाव को विद्वानों की कमजोरी स्वीकार करते हैं। विद्वानों के उपर्युक्त मतैक्य से यह बात तो सर्वमान्य है कि अभी तक यह रचना इसीलिए उपेक्षित रही है कि इसकी भाषा ब्रज थी और लिपि गुरमुखी। अतः हिन्दी और पंजाबी का विद्द्वर्ग इससे विमुख रहा।

भाई गुरदास ने दोनों भाषाओं के साहित्य में श्रीवृद्धि की। उनके समय में पंजाबी को राष्ट्रीय स्तर पर भाषा के रूप में मान्यता प्राप्त नहीं हुई थी। वह मात्र एक बोली थी या फिर सिक्ख सम्प्रदाय ने इसे गुरमुखी लिपि के माध्यम से मान्यता दी थी। पंजाबी में साहित्य लिखा अवश्य जाता था, मगर प्रचलित रूप में नहीं। भाई साहिब ने भी गुरसिक्ख प्रचारक होने के नाते मर्यादित रूप से लिखा अवश्य, मगर ब्रजभाषी क्षेत्र के प्रचारक होने के नाते उन्होंने ब्रजभाषा को ही अपनाया। इनके ११९ कवित्त-सवैये और मिलने पर भाई वीरसिंहजी ने उन्हें 'दूसरा स्कन्ध' नाम देकर संकलित किया। और भूमिका में यह लिखा कि 'इससे संभावना होती है कि भाई गुरदासजी की रचना

अभी और है।'[5] इससे स्पष्ट है कि भाई गुरदास ने ब्रजभाषा में पर्याप्त साहित्य रचा। जो अभी तक पूर्ण रूप से प्रकाश में नहीं आया। संस्कृत स्तोत्र के विषय में भी सन्देह है कि वे मात्र छः श्लोक नहीं हैं। 'वाहिगुरु स्तोत्र' नामक कृति को अभी ढूँढ़ निकालना शेष है। इन कृतियों के प्रकाश में आ जाने पर ही भाई गुरदास की हिन्दी-साहित्य के अन्य श्रेष्ठ कवियों से तुलना की जा सकती है। तो भी उपलब्ध साहित्य के आधार पर भाई गुरदास को हिन्दी के समकालीन कवियों सूर, तुलसी, केशव आदि की श्रेणी में रखा जा सकता है।

भाई गुरदास ने अपने समकालीन हिन्दी-कवियों से भिन्न रहकर भी उनकी-सी ख्याति अर्जित की। भाई गुरदास की अन्य महत्त्वपूर्ण विशेषता यह रही कि इन्होंने हिन्दी-क्षेत्रों में प्रचार कार्य करते समय भी अपनी हिन्दी (ब्रजभाषा) कविता को गुरमुखी में लिपिबद्ध किया। अतः हिन्दी और पंजाबी दोनों क्षेत्रों के साहित्य को महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

भाई गुरदास की रचना गुरवाणी की व्याख्या प्रस्तुत करती है। इसी कारण इसे 'गुरवाणी की कुंजी' का वर प्राप्त हुआ था। भाई गुरदास ने मात्र व्याख्या ही प्रस्तुत नहीं की, उन्होंने एक प्रकार से व्याख्या-प्रणाली का सूत्रपात किया, जो बाद में 'भाई प्रणाली' के नाम से विख्यात हुई। इसका प्रभाव आने वाले व्याख्याकारों पर भी पड़ा। इनके काव्य में नैतिकता के सिद्धान्तों को आने वाले गुरु कवियों ने भी अपनाया। भाई सन्तोखसिंह कोअरसिंह, सुक्खासिंह, सोहनसिंह प्रभृति कवियों ने भाई गुरदास की परम्परा को ही विकसित किया। हमने इन कवियों की रचनाओं का अध्ययन नहीं किया। अगर इनका अध्ययन किया जाए, तो 'गुरु विलास', 'गुरु प्रताप सूरज' आदि पर भाई गुरदास के साहित्य का प्रभाव स्पष्टतः देखा जा सकता है। भाई गुरदास के 'कवित्त-सवैये एक शाश्वत रचना है। अगर पंजाबी साहित्य में इसकी परम्परा का अध्ययन किया जाए, तो इससे 'कवित्त-सवैयों' का दृष्टिकोण बदल सकता है।

भाई गुरदास ने मात्र कविता की ही रचना नहीं की, अपितु कविता के माध्यम से तत्कालीन सामाजिक और साम्प्रदायिक सूत्रबद्धता के लिए प्रचार भी किया। उन्होंने ऐसे शाश्वत सिद्धान्तों और आदर्शों की स्थापना की. जिनसे देश, समाज, धर्म और सम्प्रदाय स्थायी सुख शान्ति के मार्ग पर अग्रसर हो सके।

'भाई गुरदास का व्यक्तित्व : कृतित्व' मेरा एक लघु विनम्र प्रयास है, कोई निश्चयात्मक वर्णन नहीं है और न ही अन्तिम निर्णय है। इसका अध्ययन-क्षेत्र सागर के समान विस्तृत और गहन है। मैंने उक्त विषय पर अपनी अल्प बुद्धि से उचित अनुचित कह कर विद्वानों का इस रचना के प्रति ध्यानाकर्षण करने की चेष्टा की है, ताकि इसके अध्ययन का मार्ग प्रशस्त हो सके।

सन्दर्भिका

१. गार्सां-द-तासी, हिन्दुई साहित्य का इतिहास, लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय (इलाहाबाद : हिन्दुस्तानी ऐकेडमी, १९५३), पृ० ५४.
२. मनमोहन सहगल का पत्र, दिनांक २६-४-८२, पटियाला।
३. शमशेर अशोक का पत्र, दिनांक १४-४-८२, गुआर (संगरूर)।
४. प्यारासिंह पद्म का पत्र, दिनांक २-४-८२, पटियाला।
५. भाई गुरदास, कवित्त भाई गुरदास (दूसरा स्कन्ध) सम्पा० भाई वीरसिंह (अमृतसर : खालसा समाचार, १९८०), पृ० ६.

सन्दर्भिका

हिन्दी पुस्तकें

१. आत्रेय, भीखनलाल—भारतीय नीतिशास्त्र, लखनऊ : हिन्दी समिति सूचना विभाग, १९६४।

२. गुप्त, गणपतिचन्द्र—हिन्दी-साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, चण्डीगढ़ : भारतेन्दु भवन, १९६५।

३. गुप्त, जगदीश—रीति-काव्य-संग्रह, इलाहाबाद : साहित्य-भवन प्रा० लिमिटेड, १९७०।

४. गुप्त, मदनगोपाल—मध्यकालीन हिन्दी-काव्य में भारतीय संस्कृति, दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, १९६८।

५. चौबे, झारखण्डे—मध्ययुगीन भारतीय समाज एवं संस्कृति, लखनऊ : उत्तर प्रदेश हिन्दी-संस्थान, १९७९।

६. जार्ज, एम०—भक्ति-आन्दोलन और साहित्य, आगरा : प्रगति प्रकाशन, १९७८।

७. तासी, गार्सां द—हिन्दुई साहित्य का इतिहास, अनु० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, इलाहाबाद : हिन्दुस्तानी ऐकेडमी, १९५३।

८. नगेन्द्र—सम्पा० हिन्दी-साहित्य का इतिहास, दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, १९७३।

९. पाण्डे, गोविन्दचन्द—मूल्य मीमांसा, जयपुर : राजस्थान हिन्दी-ग्रन्थ-अकादमी, १९७३।

१०. भाई गुरदास—'कवित्त-सवैये', अमृतसर : शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, १९५६।

११. मिश्र बन्धु—मिश्रबन्धु-विनोद, लखनऊ : गंगा-पुस्तक-माला, १९७२।

१२. मिश्र, हृदयनारायण—नीतिशास्त्र की भूमिका, चण्डीगढ़ : हरियाणा हिन्दी ग्रन्थ-अकादमी १९७६।

१३. मोतीसिंह—निर्गुण साहित्य : सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, वाराणसी : नागरी प्रचारिणी सभा, १९६२।

१४. शास्त्री, परमानन्द—श्री पिंगल-पीयूष, दिल्ली : ओरियण्टल बुक डिपो, १९५३।

१५. शुक्ल, रामचन्द्र—हिन्दी-साहित्य का इतिहास, वाराणसी : नागरी प्रचारिणी सभा, संवत् २०३५।

१६. सहगल, मनमोहन—गुरु ग्रन्थ साहिब का सांस्कृतिक सर्वेक्षण, पटियाला : भाषा-विभाग, पंजाब।

१७ सहगल, मनमोहन—पंजाब का हिन्दी-साहित्य, पटियाला : लीना पब्लिशर्ज—सन् अज्ञात ।

१८. सिंह, राजदेव—सन्त-साहित्य की भूमिका, दिल्ली : आर्य बुक डिपो, १९७४।

१९. सिंह, शम्भुनाथ—हिन्दी-काव्य की सामाजिक भूमिका, वाराणसी : चौखम्भा विद्या-भवन, १९६६ ।

पंजाबी पुस्तकें

१. अरशी, साहिबसिंह—सुखमनी साहिब दा आलोचनात्मक अध्ययन, जींद : अरोड़ा पब्लिशर्ज, १९७३ ।

२. अर्जुनदेव (गुरु), सुखमनी साहिब, अमृतसर : खालसा ब्रदर्ज, सन् अज्ञात ।

३. अमराफिकाना, क० ज० गुरु नानक अते उना दा समां, मास्को : प्रगति प्रकाशन, १९७७।

४. आहलुवालिया, जसबीरसिंह, सिक्ख फलसफे दी भूमिका—अमृतसर : रघुवीर रचना प्रकाशन, १९७६ ।

५. कसेल, किरपालसिंह, सम्पादक—पंजाबी साहित दा इतिहास, पटियाला : भाषा-विभाग, पंजाब, १९७१ ।

६. कोहली, सुरिन्दरसिंह—पंजाब यूनिवर्सिटी पंजाबी साहित दा इतिहास—चण्डीगढ़ : पंजाब यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन ब्यूरो, १९७३ ।

७. गणपति राय—एथिक्स एण्ड सोशल फिलासफी, (पंजाबी), जालन्धर : राज बुक डिपो० सन् अज्ञात ।

८. गिआनी, बिशनसिंह—कवित्त सवैये सटीक भाई गुरदासजी, अमृतसर : जवाहरसिंह किरपालसिंह एण्ड को०, १९७६ ।

९. गिआनी, नरैनसिंह, ४१ वारां भाई गुरदास, अमृतसर : जवाहरसिंह किरपाल-सिंह, १९१४ ।

१०. जग्गी, रत्नसिंह—गुरु नानक दी विचारधारा—दिल्ली : नवयुग प्रकाशन, १९६९ ।

११. जग्गी, रत्नसिंह—भाई गुरदास जीवनी ते रचना, पटियाला : पंजाबी विश्व-विद्यालय, १९७४ ।

१२. जगबीरसिंह—गुरु नानक वाणी विच नैतिकता, पटियाला : भाषा-विभाग, पंजाब, १९७३ ।

१३. तारनसिंह—गुरवाणी दीआं बिआखिया प्रणालियाँ, पटियाला : पंजाबी यूनिव-र्सिटी, १९८० ।

१४. दीप, दलीपसिंह—भाई गुरदास, पटियाला : भाषा-विभाग, पंजाब, १९८१ ।

१५. प्रीतमसिंह—सिक्ख फलसफे दी रूपरेखा, अमृतसर : गुरु नानकदेव यूनिवर्सिटी, १९७५ ।

१६. प्रेमप्रकाशसिंह, गुरु नानक ते निर्गुण विचारधारा, पटियाला : भाषा-विभाग, पंजाब १९७३ ।
१७. पद्म, पिआरासिंह—संखेप सिक्ख इतिहास, पटियाला : कला मन्दिर लोअर माल, १९७९ ।
१८. खैदी, कालासिंह —गुरु नानक शब्द रत्नाकर, पटियाला : भाषा-विभाग, पंजाब (सन् अज्ञात) ।
१९. बैनर्जी, आई० बी०, खालसे दी उत्पत्ति (जिल्द पहली) अनु० प्रीतपालसिंह, पटियाला : पंजाबी यूनिवर्सिटी, १९७६ ।
२०. भोगल, पिआरासिंह—पंजाबी साहित दा इतिहास, जालन्धर : हिरदेजीत प्रकाशन, १९७१ ।
२१. भाई वीरसिंह—कवित्त भाई गुरदास (दूसरा स्कन्ध), अमृतसर : खालसा समाचार, १९८० ।
२२. भाई सन्तोखसिंह, गुरु प्रताप सूरज ग्रन्थ, सम्पादक पिआरासिंह पद्म, पटियाला : भाषा-विभाग, पंजाब, १९७४ ।
२३. लालसिंह, भाई गुरदास—पटियाला : भाषा-विभाग, पंजाब, १९६९ ।
२४. लालसिंह—सम्पादक मध्यकालीन पंजाबी साहित दा इतिहास, पटियाला : भाषा-विभाग, पंजाब, १९७० ।
२५. सरदूलसिंह—भाई गुरदास, पटियाला : भाषा-विभाग, पंजाब, १९६१ ।
२६. सूदी, करतारसिंह—गुरु अर्जुनदेव ते सन्त दादूदयाल, चण्डीगढ़ : पंजाबी लेखक सदन, १९६९ ।

संस्कृत पुस्तकें

१. मनुस्मृति (द्वितीय खण्ड), सम्पादक अ. ह. दबे—भारतीय विद्या-भवन, बम्बई (सन् अज्ञात) ।
२. मम्मट—काव्य-प्रकाश, कलिकाता : कलिकाता यन्त्रे, ई० १८९७ ।
३. विश्वनाथ, साहित्य-दर्पण, दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास, १९७७ ।
४. श्रीमद्भगवद्गीता, गोरखपुर, गीता-प्रेस, गोरखपुर, १९५० ।

अंग्रेज़ी पुस्तकें

1. Akbar, Mohammad—The Punjab under the Mughals, Delhi : Idreha Adyazbcizat. 1974.
2. Ali, M. Athar—The Mughal Nobility under Aurangzeb, Bombay : Asia publishing House, 1970.
3. Chopra, P.N.—Social condition. The Mughal Empire, Bombay : Bhartiya Vidya Bhawan, 1974.

4. Day, U.N.—The Mughal Government, New Delhi : Munishi Ram Manohar Lal, 1970.
5. Khushwant Singh—A History of the Sikh, Delhi : Oxford University, 1977.
6. Narang, K.S.—History of the Punjab, Delhi : U. C. Kapur & Sons, 1969.
7. Srivastava, M. P. Society and Culture in Medinmal India, Allahabad : Chugh publications, 1975.
8. Tripathi, R. P.—Some Aspects of Muslim Administration, Allahabad : Central Book Depot, 1966.

पत्रिकाएँ

१. पंजाबी दुनियाँ, भाई गुरदास विशेषांक, सम्पादक—लालसिंह, पटियाला : भाषा-विभाग, पंजाब, १९६८।

कोश-ग्रन्थ-सूची

हिन्दी-कोश

१. मानविकी पारिभाषिक कोश (दर्शन खण्ड) सम्पादक नगेन्द्र, दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, १९६६।
२. वृहत् हिन्दी कोश, सम्पादक कालिकाप्रसाद, वाराणसी : ज्ञान मण्डल लिमिटेड, संवत् २०३०।
३. हिन्दी-शब्द सागर (पंचम भाग), सम्पादक श्यामसुन्दरदास, वाराणसी : काशी नागरी प्रचारिणी सभा, १९६८।

पंजाबी-कोश

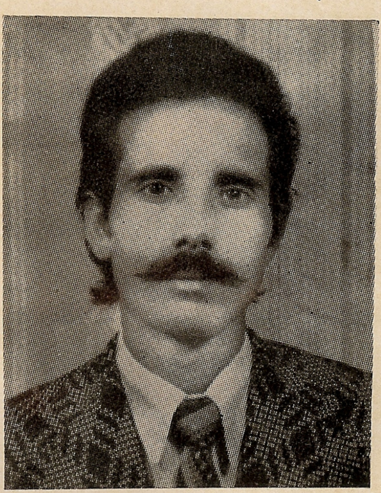
१. गुरुग्रन्थ-विचारकोश, सम्पादक पिआरासिंह पद्म—पटियाला : पंजाबी यूनिवर्सिटी, १९६९।
२. गुरु ग्रन्थ संकेत कोश, सम्पादक पिआरासिंह पद्म—पटियाला : पंजाबी यूनिवर्सिटी, १९७७।
३. गुरु शब्द रत्नाकर महान कोश—सम्पादक भाई कान्हसिंह नाभा—पटियाला : भाषा-विभाग, पंजाब, १९७४।

संस्कृत-कोश

१. संस्कृत शब्दार्थ कोस्तुभ, सम्पादक स्व० चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा, इलाहाबाद : रामनारायणलाल बेनीप्रसाद, १९७७।

अंग्रेजी कोश

1. Encyclopaedia Americana, Vol. 10, New York : Americana Corporation, 1972.
2. The New Encyclopaedia Britanica Vol. VI, Chicago : William Benton publishers, 1974.
3. Encyclopaedia of Philosophy, Vol. 3, New York : The Machmillon Company and the free press, 1967.
4. Encyclopaedia of Religion and Ethics Vol. V, New York : T and T Clerk, 1964.



निर्मलकुमार कौशिक

पंजाब में रचित हिन्दी-साहित्य के नवचिन्तक।
साहित्य, शिक्षा व कला में समान रुचि।

जन्म	:	६ सितम्बर १९५३.
शिक्षा	:	एम० ए० (हिन्दी व संस्कृत) ; एम० फिल् (हिन्दी) ; आयुर्वेदरत्न, संगीतभूषण।
व्यवसाय	:	हिन्दीअध्यापन।
पता	:	बाज़ार बांसा वाला, फिरोज़पुर शहर (पंजाब)-१५२००२
रुचि	:	हिन्दी व पंजाबी में कविता-रचना।